

[५]

२—तबले का मिलाना	...	...	७५
३—तबले की उत्पत्ति	...	...	७६
४—तबले के घराने	...	...	७७
५—तबले के दस वर्ण	...	...	७४
६—तबले का अभ्यास	...	...	७४
७—ठेके की किस्में	...	...	७५
८—तीहा	...	...	७५
९—मुखड़ा या मोहरा	...	...	७६
१०—कायदा	...	...	७७
११—पल्टा	...	...	७७
१२—उठान	...	...	७७
१३—पेशकार	...	...	७७
१४—परन	...	...	७७
१५—गत	...	...	७७
१६—रेला	...	...	७७
१७—संगत	...	...	७७
१८—तबला सोलो	...	...	७७
२०—संगीत में ताल का महत्व	...	...	७७

अष्टम अध्याय [भारतीय वाद्य]

१—तानपूरा (अंग वर्णन)	...	...	८४
२—तानपूरे के तारों को मिलाना	...	...	८७
३—सितार (अंग वर्णन)	...	...	८८
४—सितार के तार तथा उनका मिलाना	...	...	१००
५—मिजराय	...	...	१०१
६—जमजमा	...	...	१०२

[६]

७—तरवें	...	...	१०२
८—थाट बदलना	...	...	१०२
९—गत (विलंबित तथा द्रुत)	...	...	१०४
१०—बाज	...	...	१०५
११—जोड़	...	...	१०६
१२—तोड़ा	...	...	१०७
१३—झाला	...	...	१०७
१४—सूत अथवा प्रसीट	...	...	१०७

नवम अध्याय [जीवनियाँ]

१—शारंगदेव ✓	...	...	१०६
२—अमीर खुसरो ✓	...	...	११०
३—स्वामी हरिदास	...	...	११३
४—तानसेन ✓	...	...	११५
५—पं० विष्णु दिगम्बर पालुकर	...	...	११८
६—पं० विष्णु नारायण भातखण्डे	...	...	१२०

दशम अध्याय [रागों का वर्णन]

१—राग कल्याण	...	...	१२३
२—राग बिलावल	...	...	१२४
३—राग खमाज ✓	...	...	१२६
४—राग भैरव	...	...	१२७
५—राग काफी ✓	...	...	१२६
६—राग आसावरी	...	...	१३०
७—राग भैरवी	...	...	१३२
८—राग भारवा	...	...	१३४

[७]

1 rivat

६—राग पूर्वा	...	...	१३६
१०—राग तोड़ी	...	...	१३८
११—राग भूपाली	...	...	१३९
१२—राग बिहग	...	...	१४१
१३—राग देश	...	...	१४२
१४—राग तिलक कामोद	...	...	१४४
१५—राग बिन्द्रावनी सारंग	...	...	१४५
१६—राग बागेश्री	...	...	१४७
१७—राग भीमपलासी	...	...	१४९
१८—राग पीलू	...	...	१५०
१९—राग हमीर	...	...	१५२
२०—राग मालकोस	...	...	१५३

२० रागों पर एक बिहंगम दृष्टि ... (१५६)

Vijaya Kumari Saha

X - C.

B. 6/3 Pitambar Pura

B. K. Saha

Varanasi

प्रथम अध्याय

संगीत

‘संगीत’ शब्द के अन्तर्गत गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों कलाओं का समावेश होना है। व्यवहार में ये तीनों कलाएँ अपना स्थान अलग अलग रखती हैं तथा कुछ अन्य देशों में इन्हें एक दूसरे से स्वतन्त्र भी माना जाता है। परन्तु भारतीय संगीत में इन तीनों कलाओं का संयोग होता है और इस प्रकार इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं रखा जा सकता। आपस में अनिष्ट सम्बन्ध होने से एक के बिना दूसरे का आकर्षण नष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिये यदि केवल नृत्य हो रहा हो तथा उसके साथ वाद्य न बज रहे हों तो नृत्य में आनन्द नहीं आ सकता। ये कलाएँ एक दूसरे पर आश्रित हैं। गायन इन तीनों में श्रेष्ठ है क्योंकि गायन के अधीन वादन है और वादन के अधीन नृत्य है ‘संगीत रत्नाकर’ नामक ग्रन्थ में लिखा है :—

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतं मुख्यते ।

नृत्यं वाद्यानुगं प्राक्तं वाद्यं गीतानुवर्त्ति च ॥

अर्थात् :—गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों कलाओं के मेल को संगीत कहते हैं। इनमें नृत्य वादन के अधीन है तथा वादन गायन के अधीन है।

कुछ लोग केवल गायन को ही 'संगीत' कह कर पुकारते हैं इसका कारण यह है कि गायन इन तीनों कलाओं में सर्वश्रेष्ठ है। संगीत शब्द की व्याख्या करने से भी 'सं' का अर्थ हुआ उत्तम तथा 'गीत' का अर्थ हुआ गायन अथवा गीत, अर्थात् उत्तम गायन को संगीत कहेंगे। परन्तु वास्तव में भारतीय संगीत में ऊपर लिखी तीनों कलाओं का समावेश होता है। सांगंश में हम कह सकते हैं कि गाने, बजाने और नाचने को संगीत कहते हैं।



संगीत एक उत्कृष्ट ललित कला है जिसका मुख्य आधार नाद अथवा आवाज है। इसी कारण इस कला को 'नादब्रह्म' कह कर पुकारा गया है। इस कला को हम स्वरों का ऐसा सन्मिश्रण कह सकते हैं जो कलाकर की हृदयगत भावनाओं को सधुर बनाकर दूसरों के सामने प्रकट करता है। इसलिये संगीत को हृदय की भाषा' अर्थात् हृदयगत भावनाओं को प्रकट करने की भाषा माना जाता है। अंग्रेज विद्वान रसकिन कहता है "अन्तरात्मा का उत्थान तथा उसे कलात्मक और आनन्दमय स्वरूप प्रदान करना ही संगीत कला का मुख्य ध्येय होना चाहिये।" स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ने भी इसे सौन्दर्य का साकार एवं सजीव प्रदर्शन माना है। इस कला का प्राणीमात्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य ही क्या पशु तथा पक्षी भी इस पर अपने प्राण न्यौछावर कर देते हैं। प्राणीमात्र के लिये यह अमृत-रस है। आत्मा को परमात्मा तक पहुँचाने में यह कला बीच की सीढ़ी के समान है।

भारत की दक्षिणी तथा उत्तरी संगीत पद्धतियाँ

सारे भारतवर्ष में सङ्गीत की दो भिन्न-भिन्न प्रणालियाँ प्रचलित हैं जो इस प्रकार हैं:—

(१) दक्षिणी अथवा कर्णाटकी संगीत पद्धति:—संगीत की यह पद्धति मैसूर, आंध्र, मद्रास आदि प्रान्तों में प्रचलित है। क्योंकि यह प्रणाली कर्णाटक देश में प्रचलित है इसलिये इसे कर्णाटकी संगीत पद्धति कहते हैं। इसका दूसरा नाम दक्षिणी संगीत पद्धति भी है।

(२) उत्तरी अथवा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति:—संगीत की यह पद्धति मैसूर, आंध्र, मद्रास आदि प्रान्तों को छोड़कर सारे भारत में प्रचलित है। क्योंकि यह प्रणाली उत्तरी भारत में प्रचलित है इसलिये इसे उत्तरी अथवा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति कहते हैं। साधारणतः जो संगीत हम लोग अपने प्रान्तों में सुनते अथवा गाते बजाते हैं, वह उत्तरी अथवा हिन्दुस्तानी संगीत कहलाता है।

भारतवर्ष में प्रचलित संगीत की ये दोनों पद्धतियाँ एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं। स्वतन्त्र होने पर भी इन दोनों में बहुत समानता है। कहते हैं कि प्राचीन काल में ये दोनों पद्धतियाँ अलग-अलग नहीं थीं। सारे भारत में केवल एक पद्धति प्रचार में थी, परन्तु बाद में चलकर दोनों पद्धतियाँ एक दूसरे से अलग हो गईं। आज भी हम देवते हैं कि दोनों पद्धतियों में एक सप्तक में कुल १२ स्वर माने जाते हैं। दोनों पद्धतियों में सप्तक के स्वरों से थाट की उत्पत्ति होती है। दोनों पद्धतियों थाट-राग सिद्धान्त को मनती हैं। इसी प्रकार अनेक समानतायें तथा भिन्नतायें इन पद्धतियों में हैं। इन

दोनों पद्धतियों का अन्तर इस पुस्तक के दूसरे भाग में दिया जायेगा ।

लोक तथा शास्त्रीय संगीत

भारतीय संगीत को हम दो भागों विभाजित कर सकते हैं:—

(१) लोक-संगीत (Light music)

(२) शास्त्रीय संगीत (Classical music)

लोक-संगीत (Light music)—इस संगीत के अन्तर्गत ढोलक के गीत, आल्हा, लोरी, भजन, चक्की के गीत, अनेक प्रान्तों में शादी-विवाह, त्यौहार आदि विशेष उत्सवों पर गाये जाने वाले गीत, सावन, मूले के गीत, फिल्मी गीत इत्यादि आते हैं। इस संगीत से जन साधारण का खूब मनोरंजन होता है क्योंकि इन गीतों को गाने अथवा समझने के लिये विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती। इन गीतों में लय, स्वर तथा काव्य तीनों का आनन्द प्राप्त होता है। इनमें से कुछ गीत ऐसे हैं जिनमें लय का विशेष महत्त्व है जैसे-ढोलक के गीत, चक्की के गीत, कीर्तन इत्यादि। कुछ गीतों में लय के साथ काव्य का भी महत्त्व है जैसे भजन, काव्य-गीत आदि तथा कुछ गीतों में स्वरों का महत्त्व अधिक है जैसे फिल्मी-संगीत। लोक-संगीत में रागों की शुद्धता पर कम ध्यान दिया जाता है।

शास्त्रीय-संगीत (Classical Music)—जो संगीत स्वर, ताल, राग, लय आदि के नियमों से बाँध कर तथा आकर्षक रीति से गाया अथवा बजाया जाता है, वह शास्त्रीय संगीत कहलाता है। लोक संगीत का कोई शास्त्र नहीं होता परन्तु इस संगीत का एक नियमित शास्त्र होता है तथा उसी शास्त्र के अनुसार गायन अथवा वादन

होता है। नियमित शास्त्र के अनुसार ही इसे गाते अथवा बजाते हैं इसलिये इसे शास्त्रीय संगीत कह कर पुकारते हैं।

शास्त्रीय संगीत को हम दो भागों में बाँट सकते हैं:—

(१) सिद्धान्तिक (Theoretical)

(२) व्यावहारिक (Practical)

सिद्धान्तिक-शास्त्रीय-संगीत:—इसके अन्दर संगीत का संपूर्ण शास्त्र आ जाता है। इसमें संगीत के पारिभाषिक शब्द जैसे—नाद, श्रुति, स्वर, सप्तक, थाट, राग, ग्राम, मूर्छना, गमक, तान, आलाप इत्यादि आते हैं। शास्त्रीय संगीत का यह अंग लिखित है और अनेक नियमों से बंधा हुआ होने के कारण बहुत विस्तृत है।

व्यावहारिक-शास्त्रीय-संगीत:—जिस प्रकार शास्त्रीय संगीत का सिद्धान्तिक अंग विकसित है उसी प्रकार उसका व्यावहारिक अंग भी प्रबल है। कला का मुख्य उद्देश्य उसकी अभिव्यक्ति अथवा उसको प्रकट करना है और विशेषकर संगीत तो एक ऐसी कला है जिसका प्रत्यक्ष में ही व्यावहार होता है। शास्त्रीय संगीत के व्यावहारिक अंग में हम गायन के प्रकार, नृत्य अथवा वादन के प्रकार, गायकी, शैली, घराने, श्रुति का उतार-चढ़ाव, आलापचारी, ताने इत्यादि को रखते हैं। भारतीय रागों तथा गायन अथवा वादन शैलियों का क्षेत्र बहुत बड़ा है। इस प्रकार शास्त्रीय संगीत का व्यावहारिक अंग (Practical) अधिक प्रबल है। पुराने समय में संगीतज्ञ पढ़े-लिखे न होने के कारण व्यावहारिक-शास्त्रीय-संगीत पर ही अधिक ध्यान देते थे।

उत्तरी-संगीत की प्रचलित दो पद्धतियाँ

उत्तरी अथवा हिन्दुस्तानी संगीत में स्वर-लिपि तथा ताल-लिपि के लिये दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं, जो इस प्रकार हैं :—

(१) भातखण्डे पद्धति ।

(२) विष्णु दिगम्बर पद्धति ।

भातखण्डे पद्धति—भातखण्डे पद्धति के अनुसार स्वर तथा ताल-लिपि चिह्न इस प्रकार लिखे जाते हैं:—

शुद्ध स्वर—ग रे ध प—कोई चिह्न नहीं होता ।

कोमल स्वर—ध ग रे—नीचे पढ़ी रेखा ।

तीव्र स्वर—[।]म—ऊपर खड़ी रेखा ।

तार सप्तक के स्वर—रें गं पं—ऊपर बिन्दु ।

मध्य सप्तक के स्वर—सा रे ग—कोई चिह्न नहीं ।

मन्द्र सप्तक के स्वर—रे ग प—नीचे बिन्दु ।

एक मात्रा का चिह्न—ग रे सा—कोई चिह्न नहीं ।

एक स्वर में आधी मात्रा—गरे सारे—नीचे चांद बनता है ।

चौथाई मात्रा का चिह्न—सारेगप इस प्रकार एक मात्रा में चार

स्वर हुये अर्थात् एक स्वर = $\frac{1}{4}$ मात्रा ।

एक चाद की एक मात्रा में कितने भी स्वर लिखे जा सकते हैं जैसे पधनिसारंग । यहाँ पर प्रत्येक स्वर = $\frac{1}{4}$ मात्रा का है ।

(,) कौमा लगाने से एक मात्रा के बराबर बराबर दो भाग हो जाते हैं जैसे सा , गरे अर्थात् सा = $\frac{1}{2}$ मात्रा और ग = रे = $\frac{1}{2}$ मात्रा

बसों के आगे लेटी लकीर लगाने से स्वरों का उच्चारण बढ़ता है जैसे—सा — सा यहाँ पर सा में ३ मात्रायें हैं । गीत का उच्चारण बढ़ाने के लिये अबग्रह (ऽ) का प्रयोग होता है जैसे श्या ऽ ऽ म !

क्षम का चिह्न—X

खाली का चिह्न—o

तालियों पर ताली की संख्या लिखते हैं जैसे २, ३, ४ आदि

मौंड—ग ।

कण स्वर या स्पर्श स्वर— ग_प प_ग ।

कोष्ठक में स्वर—(सां) = रे सां निसां अथवा सां रे निसां

विष्णु दिगम्बर पद्धति—विष्णु दिगम्बर पद्धति के अनुसार स्वर तथा ताल-लिपि के चिह्न इस प्रकार हैं:—

शुद्ध स्वर—ग रे—कोई चिह्न नहीं होता ।

कोमल स्वर—ग^१ ध्—नीचे हलन्त लगता है ।

तीव्र स्वर—म^१ या म्—नीचे सीमा या उल्टा हलन्त होता है ।

तार स्वर—ग^१ रे—ऊपर खड़ी लकीर ।

मध्य स्वर—ग रे—कोई चिह्न नहीं होता ।

मन्द्र स्वर—गं रे—ऊपर बिन्दु

स्वरों को दीर्घ करने के लिये अवग्रह लगता है जैसे—प S S म ।

अक्षरों को दीर्घ करने के लिये बिन्दु लगता है जैसे—रा . . अ ।

विभ्रांति चिह्न—(,) कोमा ।

एक मात्रा का चिह्न—सा रे

दो मात्रा का चिह्न—सा रे

आधो मात्रा का चिह्न—सा रे

चौथाई मात्रा का चिह्न—सा^० रे^०

$\frac{1}{2}$ मात्रा का चिह्न—पा रे

$\frac{3}{4}$ मात्रा का चिह्न—सा रे

$\frac{1}{4}$ मात्रा का चिह्न—पा रे

ताल के प्रत्येक आवर्तन के बाद एक विराम (।) लगाया जाता है।

स्थाई के अन्त में दो विराम (॥) लगते हैं।

पूरे गीत के अन्त में तीन विराम (॥) लगते हैं।

सम का चिह्न—१

खाली का चिह्न—+

ताली के स्थान पर मात्राओं की संख्या लिखते हैं।

कण या स्पर्श स्वर ष प ग।

मीड—प ग।

भातखण्डे तथा विष्णुदिगम्बर पद्धतियों में अन्तर

भातखण्डे पद्धति

(१) भातखण्डे पद्धति के अनुसार स्वर-लेखन पद्धति के चिह्न इस प्रकार हैं:—

कोमल स्वर—ध ग

तीव्र स्वर—म

तार समक—सां रे

विष्णु दिगम्बर पद्धति

विष्णु दिगम्बर पद्धति के अनुसार स्वर—लेखन पद्धति के चिह्न इस प्रकार हैं:—

कोमल स्वर—ध् ग्

तीव्र स्वर—म् या म्

तार समक—सा रे

मन्द्र सप्तक—मं ध

स्वरों का उच्चारण बढ़ाना—
प — =

गीत का उच्चारण बढ़ाना—
रा SS म

(२) इस पद्धति के अनुसार
ताल-लिपि पद्धति के चिह्न इस
प्रकार हैं:—

सम—×

खाली—०

तालियों पर ताल की संख्या होती
है ।

(३) इस पद्धति में मात्रा और
मात्राओं को दिखलाने के लिए
(,) कौमा तथा (-) पड़ी पाई का
प्रयोग होता है तथा साथ में ~
इस चिह्न को दिखलाया जाता है
जैसे—

सा, रे-गम = सा = $\frac{1}{2}$ मात्रा,

रे — = $\frac{1}{2}$ मात्रा तथा ग = म = $\frac{1}{2}$
मात्रा

(४) कण अर्थात् स्पर्श स्वर
का चिह्न इस पद्धति में इस
प्रकार है ग प ।

T

मन्द्र सप्तक—मं ध

स्वरों का उच्चारण बढ़ाना—प
SS

गीत का उच्चारण बढ़ाना—रा
.. म

(२) इस पद्धति के अनुसार ताल-
लिपि पद्धति के चिह्न इस प्रकार
हैं:—

सम—१

खाली +

तालियों पर मात्राओं की संख्या
होती है ।

(३) इस पद्धति के अनुसार
मात्रा तथा मात्राओं के अलग-
अलग चिह्न हैं जिन्हें दिया जा
चुका है जैसे दो मात्रा का चिह्न
~ है, एक मात्रा का चिह्न—है
तथा चोथाई मात्रा का चिह्न ~
है आदि ।

ये सारे चिह्न विष्णु दिगम्बर
पद्धति के अन्तर्गत दिये जा चुके
हैं ।

(४) कण का चिह्न इस पद्धति
में भातखण्डे पद्धति से लिया
गया है जो उसी प्रकार है ।

(५) भातखण्डे पद्धति में विश्रांति का कोई चिह्न नहीं है।

(६) भातखण्डे पद्धति में गीत, गत अथवा ताल को लिपि में लिखने के लिये उमे ताल के विभागानुसार लिखते हैं।

(७) भातखण्डे पद्धति अधिक सरल तथा वैज्ञानिक है। छपाई की सुविधा की दृष्टि से यह पद्धति अधिक सरल है।

(८) गीतों को स्वर-लिपि बद्ध करके उनको भविष्य के लिये रखने की दृष्टि से यह पद्धति अधिक पूर्ण नहीं है।

(५) विष्णु दिगम्बर पद्धति में विश्रांति का चिह्न इस प्रकार है , (कौमा

(६) विष्णु दिगम्बर पद्धति में गीत, गत अथवा ताल का लिपि में लिखने के लिये ताल के विभागानुसार न लिख कर प्रत्येक आवर्तन के बाद एक खड़ी पाई (i), स्थाई के बाद दो खड़ी पाइयाँ (ii) तथा अंत में तीन खड़ी पाइयाँ (iii) लगाते हैं।

(७) विष्णु दिगम्बर पद्धति भातखण्डे पद्धति की अपेक्षा अधिक कठिन है।

(८) गीतों को स्वर-लिपि बद्ध करके उनको भविष्य के लिये रखने की दृष्टि से यह पद्धति अधिक पूर्ण है क्योंकि इसमें प्रत्येक मात्रा तथा मात्राओं के लिये अलग-अलग चिह्न हैं।

द्वितीय अध्याय

ध्वनि ✓

संगीत का सम्बन्ध ध्वनि अथवा आवाज से होता है। परन्तु ध्वनि दो प्रकार की होती है एक तो मधुर तथा दूसरी कर्कश। मधुर ध्वनि वह है जो कानों को सुनने में अच्छी लगी है तथा जिसको सुनने से प्रसन्नता होती है। कर्कश ध्वनि वह है जो कानों को अप्रिय मालूम पड़ता है तथा जिसे सुन कर प्रसन्नता नहीं होती। ऐसी ध्वनि को कोलाहल या शोर-गुल आदि भी कहते हैं। संगीत का सम्बन्ध मधुर ध्वनि से है।

आन्दोलन—ध्वनि की उत्पत्ति कंपन अथवा आन्दोलन (vibration) से होती है। साधारणतः जब किसी वाद्य के तार को छेड़ा जाता है तो उस में कंपन अथवा आन्दोलन उत्पन्न होते हैं जिससे ध्वनि संचारित होती है। तार को छेड़ने से वह एक ओर कुछ दूरी तक जाता है फिर लौट कर उतनी ही दूर दूसरी ओर जाता है। बाद में वह अपने पूर्व स्थान पर आ जाता है। परन्तु अपने स्थान पर आकर वह रुकता नहीं है बल्कि क्रमशः इसी प्रकार ऊपर नीचे होकर कंपन करता रहता है। यह कंपन तब तक होते रहते हैं जब तक तार का वेग शान्त नहीं होता। जब तार अपने स्थान से एक ओर जाकर तथा फिर दूसरी ओर जाकर अपने पूर्व स्थान पर लौटता

है तो इस प्रकार वह एक आन्दोलन करता है। इन आन्दोलनों का क्रम चलता रहता है। परन्तु जब तार पर किये गये प्रहार की शक्ति कम हो जाती है तब तार के ऊपर-नीचे आने जाने की दूरी भी कम होती जाती है और अन्त में तार शान्त हो जाता है। तार में कंपन शान्त होने से उसकी ध्वनि भी शान्त हो जाती है। विद्वानों ने इन आन्दोलनों को नापने का प्रयत्न किया है और इनके नापने का मापदण्ड एक सेकिन्ड रक्खा है। एक सेकिन्ड में आन्दोलनों की संख्या जितनी कम होगी ध्वनि उतनी ही नीची होगी तथा एक सेकिन्ड में आन्दोलनों की संख्या जितनी अधिक होगी ध्वनि उतनी ही ऊँची होगी।

नाद

आन्दोलनों को देखते हुये ध्वनि दो प्रकार की हो सकती है।

(१) वह ध्वनि जिस में कंपन या आन्दोलन (vibration) नियमित होते हैं तथा जो सुनने में कानों का प्रिय लगती है। (२) वह ध्वनि जिस में कंपन या आन्दोलन अनियमित होते हैं तथा जो सुनने में कानों का अप्रिय मालूम पड़ती है। ऐसी ध्वनि संगीत के काम की नहीं होती। संगीत का सम्बन्ध मधुर ध्वनि से है जिस में नियमित आन्दोलन होते हैं। वह ध्वनि जो संगीत में प्रयोग की जाती है 'नाद' कहलाती है। कहने का अर्थ यह हुआ कि संगीतोपयोगी ध्वनि को नाद कहते हैं। नाद ही संगीत का आधार है।

नाद के दो भेद हैं (१) अनाहत नाद (२) आहत नाद।

अनाहत नाद—जो नाद बिना किसी आघात के उत्पन्न होता है तथा साधारणतः सुनाई नहीं पड़ता, अनाहत नाद कहलाता है। इसे सूक्ष्म या गुप्त नाद भी कहते हैं। सिद्ध लोग इसकी साधना करते

मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। अनाहत नाद का देशी अथवा अपने संगीत से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह नाद तो स्वयं उत्पन्न होता है। इसका प्रयोग देवताओं के संगीत के लिये होता है।

आहत नाद—जो नाद किसी आघात द्वारा उत्पन्न होता है उसे आहत नाद कहते हैं देशी अथवा प्रचलित संगीत में इसी नाद का प्रयोग होता है। यह नाद तीन प्रकार से उत्पन्न हो सकता है—(१) किसी एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर आघात होने से जैसे तबले पर जब हाथ का आघात होता है तब नाद उत्पन्न होता है। (२) किन्हीं दो वस्तुओं के आपस में रगड़ने से जैसे सारंगी अथवा बेले पर जब गज रगड़ा जाता है तब ध्वनि उत्पन्न होती है। (३) किसी वस्तु में जब हवा का प्रवेश होता है अथवा जब हवा भरी या निकाली जाती है, जैसे बाँसुरी या वीन में हवा भरने से आवाज उत्पन्न होती है। इसी प्रकार कण्ठ में भी वायु के प्रवेश से कण्ठ भी स्वर-तन्त्रियाँ कम्पित होती हैं और ध्वनि उत्पन्न होती है।

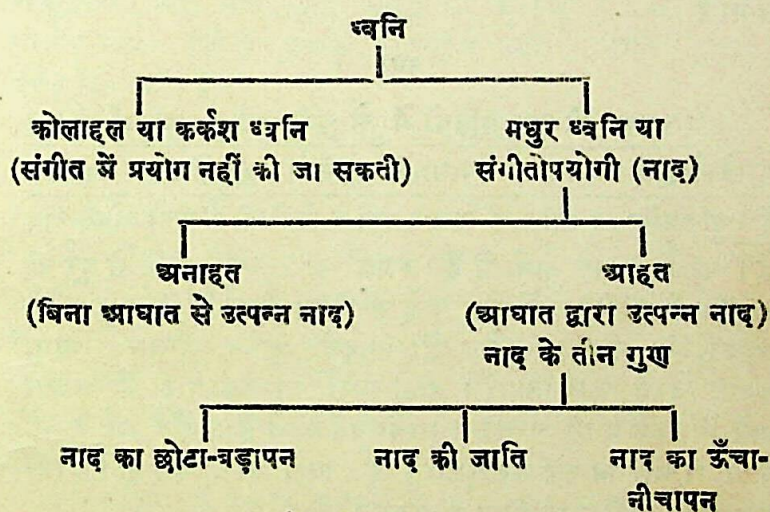
नाद के लिये तीन मुख्य बातों की आवश्यकता होती हैं:—

नाद का छोटा-बड़ापन:— Magnitude) एक ही नाद धीमे व तेज हो सकता है। नाद का यह गुण नाद के उत्पन्न करने पर निर्भर है। क्योंकि जब एक नाद धीमे से उत्पन्न किया जायेगा तब वह कम सुनाई पड़ेगा तथा वही नाद जब जोर से उत्पन्न किया जायेगा तब दूर तक सुनाई पड़ेगा। जब नाद धीमे से उत्पन्न होता है तब उसे नाद का छोटापन कहते हैं तथा जब नाद जोर से उत्पन्न किया जाता है तब उसे नाद का बड़ापन कहते हैं। उदाहरण के लिये यदि 'सा' को हम धीरे से उत्पन्न करें तो उसे केवल पास के लोग ही सुन सकते हैं परन्तु यदि उसे जोर से उत्पन्न किया जाये तो दूर के लोग भी सुन सकते हैं। यही गुण नाद का छोटा-बड़ापन कहलाता है।

नाद की जाति:—(Timbre) नाद का यह गुण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। नाद के इस गुण से हमको यह मालूम होता है कि जो नाद उत्पन्न हो रहा है वह किस वस्तु अथवा वाद्य का है। कहने का अर्थ यह है कि नाद के उत्पन्न होने पर हम केवल उसे सुनकर कह सकते हैं कि नाद अमुक वाद्य अथवा किसी परिचित कण्ठ से उत्पन्न हो रहा है। नाद के इस गुण को नाद की जाति कहते हैं। उत्पन्न नाद की जाति इस गुण के द्वारा मालूम होती है उदाहरण के लिये कई वाद्यों के एक साथ बजने पर हम बिना देखे यह कह सकते हैं कि अमुक ध्वनि सारंगी की है तथा अमुक ध्वनि तबले की है। यहाँ तक होता है रिकॉर्ड आदि बजने पर हम गाने वाले का नाम जान जाते हैं। नाद का यही गुण नाद की जाति कहलाता है।

नाद का ऊँचा-नीचापन:—(Pitch) प्रत्येक नाद दूसरे नाद से ऊँचा अथवा नीचा होता है जैसे 'सा' से ऊँचा 'रे' है तथा 'रे' से नीचा 'सा' है। जब एक नाद दूसरे नाद से ऊँचा होता है तब उसे नाद का ऊँचापन तथा जब एक नाद दूसरे नाद से नीचा होता है तब उसे नाद का नीचापन कहते हैं। नाद का ऊँचा-नीचापन नाद में उत्पन्न होने वाली एक सेकिन्ड की आन्दोलन संख्याओं पर निर्भर होता है एक सेकिन्ड में नाद की आन्दोलन संख्या जितनी अधिक होगी, नाद उतना ही ऊँचा होगा तथा एक सेकिन्ड में नाद की आन्दोलन संख्या जितनी कम होगी नाद उतना ही नीचा होगा। उदाहरण के लिये मध्यम स्वर की आन्दोलन संख्या गान्धार स्वर की आन्दोलन संख्या से अधिक है इसलिये मध्यम स्वर गान्धार स्वर से ऊँचा है तथा पंचम स्वर की आन्दोलन संख्या धैवत स्वर की आन्दोलन संख्या से कम है इसलिये पंचम स्वर धैवत स्वर से नीचा

है। इसी तरह नाद ऊँचे-नीचे हुआ करते हैं, नाद के इस गुण को नाद का ऊँचा-नीचापन कहते हैं।



श्रुति

संगीतोपयोगी नाद जो कानों को साफ साफ सुनाई पड़े श्रुति कहलाता है। शास्त्रकार श्रुति की परिभाषा इस प्रकार करते हैं “श्रूयते इति श्रुति” अर्थात् जो आवाज कानों को सुनाई दे वह श्रुति है। ध्यान से देखने पर यह परिभाषा उचित नहीं दीख पड़ती है। क्योंकि संगीतोपयोगी आवाज को छोड़कर और भी आवाजें कानों को सुनाई पड़ती हैं पर वे श्रुति नहीं हैं। श्रुति की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं:—वह संगीतोपयोगी ध्वनि अथवा नाद जो कानों को साफ साफ सुनाई पड़े तथा जो एक दूसरे से स्पष्ट तथा अलग पहिचानने में आ सके, उसे श्रुति कहते हैं। अलग तथा

स्पष्ट होने के कारण श्रुति की संख्या एक सप्तक में निश्चित हो जाती है। शास्त्रकारों ने एक सप्तक में कुल २२ श्रुतियाँ मानी हैं।

स्वर

एक सप्तक की २२ श्रुतियों में से चुनी गई ७ श्रुतियाँ जो एक दूसरे से कुछ अन्तर पर हैं तथा जो सुनने में मधुर हैं, स्वर कहलाती हैं। श्रुति और स्वर में कोई अन्तर नहीं है दोनों ही संगीतोपयोगी नाद हैं। अन्तर केवल नामों में है। सप्तक की २२ श्रुतियों में से दूर की ७ श्रुतियाँ छाँटी गई हैं और उन्हें स्वरों का नाम दे दिया गया है। ७ स्वरों के नाम इस प्रकार हैं:—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद। इन्हीं स्वरों को व्यवहार में अथवा गाने में इनके प्रथम अक्षरों से सम्बोधित करते हैं अर्थात् सा, रे, ग, म, प, ध और नि कह कर पुकारते हैं। स्वरों के दो रूप होते हैं (१) शुद्ध रूप (२) विकृत अथवा चल रूप।

शुद्ध स्वर:—जब ऊपर लिखे सात स्वर अपने निश्चित स्थान पर रहते हैं तो शुद्ध स्वर अथवा प्राकृत स्वर कहलाते हैं। कहने का तात्पर्य यह हुआ कि जब यह सातों स्वर अपनी निश्चित श्रुतियों पर स्थिर रहते हैं तब वे शुद्ध स्वर कहलाते हैं। परन्तु इन सात स्वरों में से रे ग म ध नि स्वर शुद्ध रूपों के अतिरिक्त अपने विकृत रूपों में भी आते हैं अर्थात् ये स्वर अपने स्थान से कभी-कभी ऊपर या नीचे भी हो जाते हैं। इसलिये इनके दानों रूप होते हैं। इन सात स्वरों में केवल सा और प स्वर अपने रूप नहीं बदलते इसलिये वे अचल स्वर कहलाते हैं।

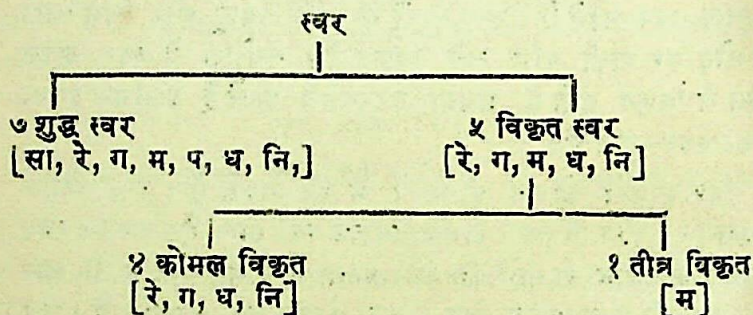
विकृत अथवा चल स्वर:—जब रे, ग म ध नि स्वर अपने शुद्ध स्थान से ऊपर या नीचे की ओर हटते हैं तब उन्हें विकृत

आ चल स्वर कहते हैं। सात स्वरों में केवल षड्ज और पंचम स्वरों को छोड़ कर बाकी पाँच स्वर विकृत हैं। क्योंकि ये स्वर अपने स्थान से विकृत होते हैं अथवा ऊपर-नीचे हटते हैं इसलिये इनका विकृत स्वर कहते हैं।

विकृत स्वरों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। (१) कोमल विकृत (२) तीव्र विकृत। कोमल विकृत तब होता है जब कि स्वर अपने शुद्ध स्थान से नीचे की ओर हटता है जैसे रे, ग, ध, नि स्वर जब नीचे की ओर विकृत होते हैं तब कोमल स्वर कहलाते हैं। जब स्वर अपने शुद्ध स्थान से ऊपर की ओर हटता है तब तीव्र विकृत कहलाता है। मध्यम स्वर जब ऊपर की ओर हटता है तब तीव्र मध्यम कहलाता है। यहाँ पर हम यह कह सकते हैं कि कोमल होने से स्वर नीचा हो जाता है तथा तीव्र होने से स्वर ऊँचा हो जाता है।

अब हमको यह देखना चाहिये कि शुद्ध तथा विकृत मिलाकर कुल कितने स्वर होते हैं। सात स्वरों में से केवल 'षड्ज' और 'पंचम' स्वर अटल या अचल होते हैं इसलिये इनके अन्य स्वरों की तरह दो-दो रूप देखने को नहीं मिलते। बाकी पाँच स्वर अर्थात् ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत और निषाद विकृत हैं। इन पाँच स्वरों के दो-दो रूप हम देखते हैं। एक तो उनका शुद्ध रूप तथा दूसरा विकृत रूप। इस प्रकार सात शुद्ध स्वर हुए और पाँच विकृत स्वर हुए जो कुल मिलाकर $7+5=12$ होते हैं। ये १२ स्वर इस प्रकार हैं—(१) 'सा' (२) कोमल 'रे' (३) शुद्ध 'रे' (४) कोमल 'ग' (५) शुद्ध 'ग' (६) शुद्ध 'म' (७) तीव्र 'म' (८) 'प' (९) कोमल 'ध' (१०) शुद्ध 'ध' (११) कोमल 'नि' (१२) शुद्ध 'नि'। सरलता के लिए स्वरों का विभाजन हम चित्र द्वारा इस प्रकार समझ सकते हैं:—

का० नं० २



श्रुति-स्वर विभाजन

जैसा कि बतलाया जा चुका है भारतीय संगीत में एक सप्तक में कुल २२ श्रुतियाँ मानी जाती हैं। इन २२ श्रुतियों को सप्तक के सात स्वरों में बाँट दिया गया है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इन्हीं २२ श्रुतियों में से खास-खास ७ श्रुतियाँ छाँट कर इन्हीं स्वरों के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार श्रुति और स्वर में कोई अन्तर नहीं है केवल अन्तर इनके नामों में है। २२ श्रुतियाँ में से दूर-दूर की ७ श्रुतियाँ छाँट कर स्वरों के नामों से पुकारते हैं तथा बाकी की श्रुतियाँ इन्हीं सात स्वरों में नियमानुकूल बाँट दी गई हैं। शास्त्रकारों ने श्रुति-स्वर-विभाजन नीचे लिखे सिद्धान्त के अनुसार किया है।

नोट:—कभी-कभी शुद्ध मध्यम को कोमल मध्यम कह कर पुकारा जाता है। कारण यह है कि तीव्र मध्यम की अपेक्षा शुद्ध मध्यम नीचा होता है और कोमल के अर्थ यहाँ नीचा स्वर होता है। इसी तरह शुद्ध रे, ग, ध, नि स्वरों को तीव्र रे, ग, ध, नि कह कर भी पुकारते हैं। कारण यह है कि शुद्ध स्वर कोमल स्वर से ऊँचे होते हैं और तीव्र का अर्थ ऊँचा होता है इसलिये शुद्ध रे, ग, ध, नि कभी-कभी तीव्र स्वर कह कर भी पुकारे जाते हैं।

चतुश्चतुश्चतु चैव षडज् मध्यम पंचमाः ।
द्वे द्वे निषाद गांधारौ त्रिस्त्री ऋषभ धैवतौ ॥

अर्थात् :—षडज्, मध्यम और पंचम स्वरों में चार-चार श्रुतियाँ, निषाद और गांधार में दो-दो श्रुतियाँ तथा ऋषभ और धैवत में तीन-तीन श्रुतियाँ हैं ।

भारतीय संगीत का प्रत्येक ग्रन्थकार चाहे वह प्राचीन हो, मध्य-कालीन हो अथवा आधुनिक इस सिद्धान्त को अवश्य मानता है। इन तीन कालों के ग्रन्थकारों के मतों में केवल यह अन्तर है कि प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकार अपने स्वर उनकी अंतिम श्रुतियों पर स्थपित करते थे। उदाहरण के लिये यदि 'सा' में चार श्रुतियाँ हैं तो वे 'सा' को चौथी श्रुति पर स्थापित करेंगे। परन्तु आधुनिक ग्रन्थकार अपने स्वर उनकी पहली श्रुति पर स्थापित करते हैं जैसे यदि 'सा' में चार श्रुतियाँ हैं तो 'सा' पहली श्रुति पर स्थापित करते हैं ।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकार अपने सात स्वर २२ श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित करते थे—चौथी पर सा, सातवीं पर रे, नवीं पर ग, तेरहवीं पर म, सत्रहवीं पर प, बीसवीं पर ध तथा बाइसवीं पर नि । इसी प्रकार आधुनिक ग्रन्थकार अपने सात स्वर २२ श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित करते हैं :—पहली पर सा, पाँचवीं पर रे, आठवीं पर ग, दसवीं पर म, चौदहवीं पर प, अठारवीं पर ध, तथा इक्कीसवीं पर नि ।

सरलता के लिये प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक श्रुति-स्वर-विभाजन के चित्र श्रुति नामों सहित दिये जाते हैं ।

(२०)

प्राचीन तथा मध्यकालीन श्रुति-स्वर-विभाजन

श्रुति-संख्या	श्रुति नाम	प्राचीन तथा मध्यकालीन सप्त स्वरों की स्थापना
१	तीव्रा	
२	कुमुद्वती	
३	मंदा	
४	छंदोवती	'षड्ज'
५	दयावती	
६	रंजनी	
७	रक्तिका	'ऋषभ'
८	रौद्री	
९	क्रोधी	'गान्धार'
१०	वज्रिका	
११	प्रसारिणी	
१२	प्रीति	
१३	मार्जनी	'मध्यम'
१४	क्षिति	
१५	रक्ता	
१६	संदीपिनी	
१७	आलापिनी	'पंचम'
१८	मंदती	
१९	रोहिणी	
२०	रम्या	'द्वैवत'
२१	उग्रा	
२२	क्षोभिणी	'निषाद'

आधुनिक श्रुति-स्वर-विभाजन

श्रुति संख्या	श्रुति नाम	आधुनिक शुद्ध तथा विकृत १२ स्वरों की स्थापना
१	तीव्रा	... (१) षड्ज्
२	कुमुद्वती	
३	मंदा	... (२) कोमल ऋषभ
४	छंदोवती	
५	दयावती	... (३) शुद्ध ऋषभ
६	रंजनी	
७	रक्तिका	... (४) कोमल गान्धार
८	राद्री	... (५) शुद्ध गान्धार
९	क्रोधी	
१०	वज्रिका	... (६) शुद्ध मध्यम
११	प्रसारिणी	
१२	प्रीति	... (७) तीव्र मध्यम
१३	मार्जनी	
१४	क्षिति	... (८) पंचम
१५	रक्ता	
१६	संदीपिनी	... (९) कोमल धैवत
१७	आलापिनी	
१८	मंदती	... (१०) शुद्ध धैवत
१९	रोहिणी	
२०	रम्या	... (११) कोमल निषाद
२१	उग्रा	... (१२) शुद्ध निषाद
२२	क्षोभिणी	

सप्तक

सात स्वरों के समूह को जब एक क्रम से कहा जाता है अथवा लिखा जाता है तब उसे सप्तक कहते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सप्तक में सातों स्वर क्रमानुसार होते हैं। उदाहरण के लिये सा, रे, ग, म, प, ध, नि यह एक सप्तक है। सप्तक में यह ध्यान रक्खा जाता है कि सातों स्वर एक दूसरे के बाद आयें। एक सप्तक 'सा' स्वर से 'नि' स्वर तक होता है। अब इस 'नि' स्वर के बाद फिर 'सा' आता है जो पहले 'सा' से दुगुना ऊँचा होता है। इस 'सा' से दूसरा नया सप्तक आरम्भ होता है। और इस नये सप्तक के सभी स्वर पहले सप्तक के स्वरों से दुगुने ऊँचे होते हैं।

इस प्रकार न जाने कितने सप्तक एक के बाद एक करके हो सकते हैं परन्तु विद्वानों ने केवल तीन सप्तक माने हैं। कारण यह है कि साधारणतः मनुष्य की आवाज तीन सप्तकों से अधिक नहीं जा सकती। अधिकतर इन तीन सप्तकों में ही स्त्री, पुरुष और बच्चों की आवाज रहती है केवल कुछ वाद्यों में इन तीन सप्तकों के अतिरिक्त कुछ ऊपर तथा कुछ नीचे के स्वर रहते हैं। मुख्य तीन सप्तक जिन्हें ग्रन्थकार स्थान कह कर भी पुकारते हैं इस प्रकार हैं:—

- (१) मन्द्र-सप्तक
- (२) मध्य-सप्तक
- (३) तार-सप्तक

मन्द्र-सप्तक:—साधारण आवाज से दुगुनी नीची आवाज को मन्द्र सप्तक की आवाज कहते हैं। साधारण आवाज यह है जिसे धोलने अथवा जिन स्वरों को गाने में हमारे गले को कोई कष्ट न

होता तथा गले पर जोर भी नहीं पड़ता। इस साधारण आवाज से दुगनी नीची आवाज जिसके स्वर कहने से हृदय पर जोर पड़ता है, मन्द्र सप्तक की आवाज कहलाती है।

मध्य-सप्तकः—मध्य के अर्थ हैं बीच का। वह आवाज जो न अधिक नीची होती है और न अधिक ऊँची होती है अर्थात् बीच की आवाज मध्य सप्तक की आवाज कहलाती है। इस सप्तक के स्वरों को कहने से गले पर कोई जोर या कष्ट नहीं होता। मध्य सप्तक के स्वरों को कंठ से निकालते हैं। ये स्वर मन्द्र सप्तक के स्वरों से दुगने ऊँचे होते हैं।

तार-सप्तकः—मध्य सप्तक से दुगनी ऊँची आवाज को तार सप्तक की आवाज कहते हैं। इस सप्तक के स्वरों का उच्चारण करते हुये चिल्लाना पड़ता है। इस सप्तक के स्वरों को कहने से हमारे तालु अथवा मस्तक पर प्रभाव पड़ता है।

थाट

संगीत में नाद से श्रुति, श्रुति से स्वर, स्वर से सप्तक की उत्पत्ति होती है। सप्तक में शुद्ध तथा विकृत कुल मिलाकर १२ स्वर होते हैं। इन्हीं १२ स्वरों से थाटों की उत्पत्ति होती है। थाट की परिभाषा इस प्रकार है:—

सप्तक के ७ स्वरों के क्रमानुसार समूह को थाट कहते हैं। थाट में सप्तक के शुद्ध तथा विकृत स्वरों में से प्रत्येक स्वर का कोई न कोई कोई रूप अवश्य होना चाहिये तथा उसमें अनेक राग व्यपन्न करने की शक्ति भी होना चाहिये। थाट को श्रेल के नाम से

भी पुकारते हैं। शास्त्रकारों ने थाट को मेल के ही नाम से संबोधित किया है:—

मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यंजनशक्तिमान् ।

अर्थात् वह स्वर समूह जो राग उत्पन्न कर सके मेल कहलाता है।

थाट के नियमः—थाट के निम्नलिखित नियम अथवा लक्षण हैं:—

(१) थाट हमेशा सम्पूर्ण होता है अर्थात् थाट में हमेशा सात स्वर होते हैं। कारण यह है कि थाट से राग उत्पन्न होते हैं और बहुत से ऐसे भी राग उत्पन्न होते हैं जिनमें सातों स्वर लगते हैं। इसलिये यदि थाट में सात स्वर न होंगे तो वह सात स्वर वाला राग उत्पन्न नहीं कर सकता। इसलिये थाट में सात स्वरों का होना आवश्यक है।

(२) थाट में सप्तक के सात स्वर क्रमानुसार होना चाहिये अर्थात् सातों स्वर सा रे ग म प ध नि इस क्रम से होना चाहिये।

(३) थाट के लिये आरोह और अवरोह दोनों की आवश्यकता नहीं होती केवल आरोह होना आवश्यक है। आरोह होने से ही थाट को पहिचाना जा सकता है जैसे—सा रे ग म प ध नि, यह खमाज थाट है।

(४) थाट में रंजकता की आवश्यकता नहीं है। रंजकता की आवश्यकता तो राग में होती है क्योंकि वह गाया जाता है। थाट गाया नहीं जाता इसलिये उसमें रंजकता की भी आवश्यकता नहीं है।

(५) थाट में अनेक राग उत्पन्न करने की शक्ति होना चाहिये। इसलिये थाट जनक कहलाता है।

(६) थाट गाया नहीं जाता।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के दस थाट

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में केवल १० थाट माने गये हैं। इन्हीं १० थाटों के अन्तर्गत भातखण्डे जी ने हिन्दुस्तानी रागों को बाँट दिया है। यह १० थाट इस प्रकार हैं:—

यमन बिलावल और खमाजी, आसा भैरवि तोड़ि बखाने ।

भैरव पूरवि मारवा काफी, दशमित थाट चतुर गुन माने ॥

अर्थात्—यमन, बिलावल, खमाज, आसावरी, भैरवी, तोड़ी, भैरव, पूर्वी, मारवा तथा काफी यह दस थाट माने गये हैं। इन थाटों का स्वरूप इस प्रकार है:—

(१) बिलावल सत्र स्वर शुद्ध)—सा रे ग म प ध नि ।

(२) यमन (म तीव्र)—सा रे ग म प ध नि ।

(३) खमाज (नि कोमल)—सा रे ग म प ध नि ।

(४) मारवा (रे कोमल, म तीव्र)—सा रे ग म प ध नि ।

(५) काफी (ग और नि कोमल)—सा रे ग म प ध नि ।

(६) भैरव (रे और ध कोमल)—सा रे ग म प ध नि ।

(७) पूर्वी (रे और ध कोमल, म तीव्र) सा रे ग म प ध नि ।

(८) आसावरी (ग, ध, और नि कोमल)—सा रे ग म प ध नि ।

(९) तोड़ी (रे, ग, ध कोमल, म तीव्र)—सा रे ग म प ध नि ।

(१०) भैरवी (रे, ग, ध, नि कोमल)—सा रे ग म प ध नि ।

आधुनिक समय में इन १० थाटों के ऊपर बहुत वाद-विवाद चल रहा है। कारण यह है कि बहुत से राग ऐसे हैं जिनको इन १० थाटों के अन्तर्गत नहीं रख सकते। इसलिये इन थाटों की संख्या बढ़ाना आवश्यक प्रतीत हो रहा है तथा इसके लिये प्रयत्न भी किये जा रहे हैं। परन्तु अभी तक कोई सर्वमान्य हल नहीं निकल सका है।

वर्ण

गाने अथवा बजाने में जो विभिन्न क्रियाएँ होती हैं उन्हें वण कहते हैं। ग्रन्थकारों ने वर्ण की परिभाषा इस प्रकार की है :—“गान क्रियोच्यते वर्णः” अर्थात् गाने की क्रियाओं को वण कहते हैं। गायन में स्वरों की अनेक चालें होती हैं जैसे नीचे के स्वरों से ऊपर के स्वरों तक जाने की क्रिया अथवा ऊपर के स्वरों से नीचे के स्वरों पर आने का क्रिया इत्यादि। वर्ण कुल चार हाते हैं :—

स्थायी वर्णः—एक ही स्वर का बार-बार उच्चारण करने को स्थायी वण कहते हैं। स्थायी का अर्थ स्थिर होना है अर्थात् एक ही स्वर पर स्थिर होने को स्थायी वर्ण कहते हैं, जैसे—सा सा सा सा, ग ग ग ग।

आरोहि वर्णः—नीचे के स्वरों से ऊपर के स्वरों को कहने से आरोहि वर्ण हाता है, जैसे—सा रे ग म प ध।

अवरोहि वर्णः—ऊपर के स्वरों से नीचे के स्वरों को कहने से अवरोहि वर्ण होता है, जैसे—नि ध प म ग रे।

संचारी वर्णः—ऊपर दिये गये तीनों वर्णों को मिलाने से संचारी वर्ण की उत्पत्ति होती है अर्थात् स्थायी, आरोहि तथा अवरोहि।

वर्णों के मिश्रण को संचारी वर्ण कहते हैं। उदाहरण के लिये—
रे ग म, प प प, ध ध, प म ग, रे रे रे, ग ग ग, रे सा—यह संचारी
वर्ण हुआ।

राग

राग शब्द 'रंज' या 'रंजना' अथवा 'आनन्द देना' इस धातु से
उत्पन्न होता है। स्वरो तथा वर्णों की वह अनुपम रचना, जिसे सुन
कर आनन्द की प्राप्ति हो, राग कहलाता है। विद्वानों ने भी राग की
परिभाषा इस प्रकार दी है:—

योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः।

रंजको जन चित्तानां स रागः कथितो बुधै ॥

अर्थात् ध्वनि की वह विशेष रचना जिसको स्वरो तथा वर्णों
द्वारा विभूषित किया गया हो और जो सुनने वालों के चित्त को मोह
ले, राग कहलाती है। राग से विभिन्न रसों की अनुभूति होती है
इसीलिये राग की परिभाषा में कहा गया है "रसात्मक रागाः।
इस रसानुभूति से ही सुनने वालों का चित्त आकर्षित होता है।

प्रचीन काल में राग के १० लक्षण अथवा नियम माने जाते थे।
इसलिये प्रत्येक राग को उन नियमों के साथ ही गाना पड़ता था
तथा नियमों के विरुद्ध राग अशुद्ध माना जाता था। राग के प्राचीन
१० लक्षण अथवा नियम इस प्रकार हैं:—ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास,
औडत्व, पाडत्व, अल्पत्व, बहुत्व, मन्द्र और तार। इनमें से कुछ
नियमों, जैसे ग्रह, न्यास, अपन्यास का प्रचार आधुनिक समय में नहीं
है बाकी नियम आज कल भी प्रचलित हैं।

आधुनिक समय में राग के निम्नलिखित नियम अथवा लक्षण
माने जाते हैं:—

— (१) राग को किसी थाट से उत्पन्न होना चाहिये ।

(२) राग में कम से कम ५ स्वर अवश्य होना चाहिये ।

(३) राग में आरोह तथा अवरोह दोनों का होना आवश्यक है । केवल आरोह से थाट पहिचाना जा सकता है परन्तु राग नहीं पहिचाना जा सकता ।

(४) राग में वादी—संवादी स्वरों का होना आवश्यक है ।

(५) राग में रंजकता का होना आवश्यक है । राग की परिभाषा में दिया गया है “रंजको जन जित्तानां” अर्थात् रंजकता होने से ही सुनने वाले मुग्ध हो सकेंगे ।

(६) राग में कभी षड्ज स्वर वर्जित नहीं हो सकता । षड्ज स्वर को आधार-स्वर (Key-note) माना जाता है ।

(७) राग में कभी मध्यम तथा पंचम स्वर एक साथ वर्जित नहीं हो सकते । एक समय में इन दो स्वरों में से केवल एक स्वर ही वर्जित हो सकता है ।

(८) राग में किसी रस की अभिव्यक्ति होनी चाहिये ।

राग की जातियाँ

राग के नियमों अथवा लक्षणों के अनुसार उसमें कम से कम पाँच और अधिक से अधिक सात स्वर हो सकते हैं । रागों में लगने वाले स्वरों की भिन्न-भिन्न संख्याओं के कारण रागों को अलग-अलग तीन वर्गों में बाँट दिया गया है । इन्हीं वर्गों को राग की जातियाँ कहते हैं ।

रागों की तीन मुख्य जातियाँ ये हैं:—

(१) संपूर्ण—जिस राग में सातों स्वर लगे उसे संपूर्ण जाति का राग कहते हैं, जैसे राग बिलावल ।

(२) षाडव—जिस राग में केवल ६ स्वर लगें उसे षाडव जाति का राग कहते हैं जैसे राग मारवा ।

(३) औडव—जिस राग में केवल ५ स्वर लगें उसे औडव जाति का राग कहते हैं, जैसे राग भूपाली ।

परन्तु इस वर्गीकरण से हिन्दुस्तानी प्रत्येक राग इन जातियों के अंतर्गत नहीं आ सकता कारण यह है कि राग के लक्षणों में दिया गया है कि उसमें आरोह तथा अवरोह दोनों होना चाहिये । आरोह तथा अवरोह होने के कारण सम्भव है कि किसी राग के आरोह तथा अवरोह दोनों में स्वरों की संख्या एक न हो तथा कम या अधिक हो, जैसे राग खमाज है । इसके आरोह में रे वर्जित होने से ६ स्वर लगते हैं परन्तु अवरोह में ७ स्वर लगते हैं । इसलिये आरोह-अवरोह का ध्यान रखते हुये ऊपर लिखी राग की तीन जातियों में से प्रत्येक को तीन-तीन उपजातियों में बाँटा गया है जो इस प्रकार हैं:—

संपूर्ण	षाडव	औडव
(१) संपूर्ण-संपूर्ण	(१) षाडव-संपूर्ण	(१) औडव-संपूर्ण
(२) संपूर्ण-षाडव	(२) षाडव-षाडव	(२) औडव-षाडव
(३) संपूर्ण-औडव	(३) षाडव-औडव	(३) औडव-औडव

इस तरह कुल मिला कर ६ जातियाँ होती हैं जिनके अन्तर्गत हिन्दुस्तानी प्रत्येक राग रक्खा जा सकता है । यह जातियाँ उनके स्वरों की संख्या के साथ इस तरह हैं:—

(१) संपूर्ण-संपूर्ण:—आरोह तथा अवरोह दोनों में ७—७ स्वर लगते हैं ।

(२) संपूर्ण-षाडव:—आरोह में ७ स्वर तथा अवरोह में ६ स्वर लगते हैं ।

(३) संपूर्ण-औडवः—आरोह में ७ स्वर तथा अवरोह में ५ स्वर लगते हैं ।

(४) षाडव-संपूर्णः—आरोह में ६ स्वर तथा अवरोह में ७ स्वर लगते हैं ।

(५) षाडव-षाडव —आरोह तथा अवरोह दोनों में ६-६ स्वर लगते हैं ।

(६) प.डव-औडवः—आरोह में ६ स्वर तथा अवरोह में ५ स्वर लगते हैं ।

(७) औडव-संपूर्णः—आरोह में ५ स्वर तथा अवरोह में ७ स्वर लगते हैं ।

(८) औडव-षाडवः—आरोह में ५ स्वर तथा अवरोह में ६ स्वर लगते हैं ।

(९) औडव-औडवः—आरोह तथा अवरोह दोनों में ५-५ स्वर लगते हैं ।

आधुनिक समय में कुछ राग ऐसे हैं जिनमें ७ स्वर से अधिक स्वर प्रयुक्त होते हैं जैसे राग भैरवी में आजकल १२ स्वरों का प्रयोग करते हैं इसी प्रकार राग गीलू भी है । ऐसे रागों को ऊपर लिखी जातियों के अन्तर्गत नहीं रक्खा जा सकता । इन्हें मिश्र अथवा संकीर्ण जाति के राग कह कर पुकारते हैं ।

थाट और राग में अन्तर

थाट और राग एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं । इस अन्तर को इस प्रकार समझा जा सकता हैः—

(१) थाट की उत्पत्ति सप्तक के शुद्ध तथा विकृत १२ स्वरों से होती है ।

राग की उत्पत्ति थाट से होती है ।

(२) थाट में ७ स्वर होना अनिवार्य है क्योंकि यदि थाट

में ७ स्वर न होंगे तो उसमें से ७ स्वर वाले राग उत्पन्न हो ही नहीं सकते ।

राग में ७ अथवा ७ से कम स्वर भी आ सकते हैं । राग में कम से कम ५ स्वरों का होना अनिवार्य है ।

(३) थाट में सातों स्वरों को क्रमानुसार होना चाहिये अर्थात् सा रे ग म प ध नि इस क्रम से होना चाहिये ।

परन्तु राग में स्वरों का क्रमानुसार होना आवश्यक नहीं है ।

(४) थाट में केवल आरोह की आवश्यकता होती है ।

राग में आरोह तथा अवरोह दोनों की आवश्यकता होती है ।

(५) थाट में रंजकता का होना आवश्यक नहीं है ।

राग में रंजकता का होना आवश्यक है ।

(६) थाट में वादी-सम्वादी स्वरों का कोई प्रयोजन नहीं होता ।

राग में वादी-सम्वादी स्वरों का होना आवश्यक है ।

(७) थाट का नामकरण उससे निकले हुए किसी प्रसिद्ध राग के नाम पर होता है । जैसे थाट खमाज से एक प्रसिद्ध राग खमाज उत्पन्न होता है और उसी के नाम से यह थाट पुकारा जाता है ।

राग का नामकरण स्वतन्त्र है अर्थात् जिस प्रकार थाट का नाम उससे उत्पन्न प्रसिद्ध राग के नाम पर रखते हैं राग का नामकरण इस प्रकार नहीं होता बल्कि राग को कोई स्वतन्त्र नाम प्रदान किया जाता है ।



तृतीय अध्याय

अलंकार

कुछ विशेष नियमों से बाँधे हुये स्वर समुदायों को अलंकार या पल्टा कहते हैं। “संगीत रत्नाकर” नामक ग्रन्थ में अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी है :—

विशिष्टवर्ण संदर्भमलंकारं प्रचक्षते ।

अर्थात् किसी विशिष्ट वर्ण समुदाय अथवा क्रमानुसार तथा नियम-बद्ध स्वर समुदायों को अलंकार कहते हैं। अलंकारों को पल्टा भी कह कर पुकारते हैं। इनमें एक क्रम रहता है जो स्वरों के चार वर्णों अर्थात् स्थायी आरोहि, अवरोहि या संचारी से नियमित होता है। अलंकार के आरोह तथा अवरोह ऐसे दो विभाग होते हैं तथा जो क्रम एक अलंकार के आरोह में होता है वही क्रम उसके अवरोह में होना आवश्यक है। उदाहरण के लिये नीचे कुछ अलंकारों अथवा पल्टों को दिया जाता है :—

(१) आरोह—सा सा, रे रे, ग ग, म म, प प, ध ध, नि नि, सां सां ।

अवरोह—सां सां, नि नि, ध ध, प प, म म, ग ग, रे रे, सा सा ।

(२) आरोह—सा रे सा, रे ग रे, ग म ग, म प म, प ध प, ध नि ध, नि सां नि ।

अवरोह—सां नि सां, नि ध नि, ध प ध, प म प, म ग म, ग रे ग, रे सा रे ।

(३) आरोह—सा रे ग, रे ग म, ग म प, म प ध, प ध नि,
ध नि सां ।

अवरोह—सां धि ध, नि ध प, ध प म, प म ग, म ग र,
ग रे सा ।

(४) आरोह—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सां ।

अवरोह—सां ध, नि प, ध म, प ग, म रे, ग सा ।

इस प्रकार अनेक अलंकार बनाये जा सकते हैं । इनकी संख्या निश्चित नहीं की जा सकती । जितनी भी नई-नई रचनाएँ करते जाइये अलंकार उतने ही बनते जायेंगे ।

अलंकार राग की सुन्दरता को बढ़ाने में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं । अलंकार का साधारण अर्थ आभूषण होता है । जिस प्रकार आभूषणों द्वारा एक स्त्री की सुन्दरता बढ़ती है उसी प्रकार अलंकारों से राग की शोभा बढ़ती है ।

अलंकारों के अभ्यास से संगीत सीखने वाले नवीन विद्यार्थियों को अनेक लाभ होते हैं । इनके द्वारा स्वर ज्ञान, स्वर स्थान तथा लय ज्ञान ठीक होता है । आगे चलकर इनके अभ्यास से राग में अलाप तथा तानों की रचनाओं में बड़ी सहायता मिलती है । इनसे स्वरों का लगाव तथा स्वरों का आपसी सम्बन्ध ठीक होता है, गाने में लोच तथा रस आता है । इसलिये प्रारम्भ में संगीत सीखने वाले विद्यार्थियों को अलंकारों का अभ्यास करना आवश्यक है ।

अलाप

किसी राग के स्वरों का उसके वादी, संवादी तथा विशेष स्वरों को दिखलाते-हुये विस्तार करना, साथ में उसे वर्ण, गमक, अलंकार आदि से आभूषित करना, उस राग का आलाप कहलाता है । राग

का स्वरूप स्पष्ट करने के लिये उसके स्वरों को सजा-सजा कर धीमी लय में उसका आलाप करते हैं। आलाप द्वारा गायक अथवा वादक राग के विशेष स्वरों के साथ राग का स्वरूप श्रोताओं के सम्मुख अंकित करता है और अपनी हृदयगत भावनाओं को राग के स्वरों द्वारा दूसरों तक पहुँचाता है। अतएव यह स्पष्ट है कि आलाप भाव प्रधान होते हैं।

प्राचीन समय में आलाप करने के कई प्रकार प्रचलित थे जो रागालाप, आलाप्तिगान, रूपकालाप आदि नामों से पुकारे जाते थे। इनका वर्णन पुस्तक के दूसरे भाग में किया जायेगा। परन्तु आधुनिक समय में आलाप गायन दो प्रकार से होता है। एक तो गीत गाने के पूर्व ताल रहित होता है जिसे गायक नौम, तौम, त, न, री, द, तन, आदि शब्दों द्वारा अथवा आकार में गाता है तथा दूसरा गीत के साथ ताल-बद्ध होता है जिसे गायक आकार में अथवा गीत के बोलों के साथ गाता है।

आधुनिक-आलाप:—आधुनिक समय में गीत के पूर्व आलाप गायन का बहुत महत्त्व है। इस आलाप को हम चार विभागों में बाँट सकते हैं:— (१) स्थायी:—इस विभाग में गायक अपने स्वर (मध्य सप्तक का षड्ज) से राग के आलाप शुरू करता है। एक-एक स्वर को बढ़ाते या घटाते हुये मन्द्र तथा मध्य सप्तक में इसका चलन होता है। अधिक से अधिक मध्य सप्तक के मध्यम अथवा पंचम स्वर तक ही इसका विस्तार होता है। आलाप के इस विभाग को गायक अथवा वादक विलंबित लय में मीढ़, आंदोलन, खटका आदि से सजा कर प्रस्तुत करता है तथा बीच-बीच में आलापों का सम भी दिखलाता है। (२) अन्तरा:—इस विभाग में अधिकतर आलाप मध्य सप्तक के गान्धार, मध्यम अथवा पंचम स्वर से आरम्भ होते हैं तथा इनका विस्तार अधिक से अधिक मध्य सप्तक

के निषाद अथवा तार षड्ज तक होता है। इसको भी मीड, आन्दोलन, खटका, मुर्की आदि से सजा कर विलंबित लय में प्रस्तुत किया जाता है तथा बीच-बीच में आलापों का सम भी दिखलाते हैं। (३) संचारी:—इस विभाग में तार सप्तक के स्वरों का महत्त्व अधिक होता है। ख्याल गायक तथा वादक इस विभाग में आलापों की लय बढ़ा देते हैं परन्तु ध्रुपद गायक प्रायः विलंबित लय में ही इसका विस्तार करते हैं। इसमें मीड, आन्दोलन, गमक, खटका मुर्की आदि का प्रयोग अधिक होता है तथा बीच-बीच में आलापों का सम दिखलाया जाता है। (४) आभोग:—यह आलापों का अंतिम विभाग होता है इसमें तार सप्तक के स्वरों का, जहाँ तक सम्भव होता है, प्रयोग करते हैं। इस विभाग में आलापों की लय द्रुत कर दी जाती है जिससे गमक का प्रयोग बहुत सुन्दर लगता है। गायक त, न, न, न, नूँ, त, न, न, न, आदि शब्दों में तथा वादक झाला द्वारा विभिन्न लयकारियों को प्रस्तुत करता है : अन्त में अपने स्वर (मध्य षड्ज) पर आलाप की सम दिखलाकर आलाप समाप्त होते हैं।

तान

तान शब्द का अर्थ तानना अथवा विस्तार करना है। राग में लगने वाले स्वरों का विस्तार जल्द या द्रुतलय में करना तान कहलाती है। यदि आलापों को द्रुतलय में गाया अथवा बजाया जाय तो वे ही तान कहलावेंगी। आलाप और तानों में अन्तर लय का है। आलाप धीमी लय में होते हैं तथा भाव प्रधान होते हैं। तान जल्द लय में होती है तथा चमत्कार और कला प्रधान होती है। तानों के लिये अभ्यास की आवश्यकता अधिक होती है। इनको कहने के लिये राग के चलन के साथ उसके वादी-संवादी तथा

वर्ज्यावर्ज्य स्वरों का ध्यान रखना पड़ता है। तानों में लय का महत्त्व अधिक है इसलिये दुगुन, तिगुन, चौगुन, अठगुन आदि विभिन्न लयों में ताने ली जाती हैं।

तानों के प्रकार

तानों के मुख्य तीन प्रकार होते हैं जो ये हैं :—

(१) शुद्ध या सपाट तानः—जिस तान में स्वर क्रमानुसार हों उसे शुद्ध या सपाट तान कहते हैं। इस तान के लिये काफी तैयारी होना चाहिये। गायक दो या तीन सप्तकों की सपाट तान लिया करते हैं। इस तान में स्वरों का क्रम इस प्रकार होता है—ग म प ध नि सां रे गं मं पं मं गं रे सां नि ध प म ग रे सा।

(२) कूट तानः—जिस तान में स्वर क्रमानुसार नहीं होते उसे कूट तान कहते हैं। इस तान में कोई विशेष क्रम नहीं रहता जैसे—ग रे ग प प ग प ध सां ध प प ग रे रे ग प प ग रे सा सा।

(३) मिश्र तानः—सपाट तान तथा कूट तान को मिलाने से मिश्र तान बनती है। इस तान में भी कोई विशेष नियम नहीं होता, जैसे—ग म प ध नि सां रे गं गं रे सां रे सां सां नि ध प म ग ध म ग रे सा।

तानों के अन्य अनेक प्रकार होते हैं जो ख्याल गायकी में बहुधा सुनने में आते हैं जैसे—जबड़े की तान, गमक तान, बक्र तान, खटके की तान, फिरत की तान, आलंकारिक तान इत्यादि तानों

के इन प्रकारों का विस्तृत वर्णन पुस्तक के दूसरे भाग में किया जायेगा ।

पकड़

राग में एक ऐसा विशिष्ट स्वर समुदाय होता है जिससे उस राग की पहचान अथवा पकड़ होती है । ऐसे समुदाय को राग की पकड़ कहते हैं । राग की पकड़ बारम्बार कह कर राग का स्वरूप श्रोताओं के सामने रक्खा जाता है । उदाहरण के लिये राग खमाज की पकड़ इस प्रकार है—नि ध, म प ध, म ग । इस स्वर-समुदाय को कहने में ही राग खमाज की पहचान हो जाती है । पकड़ को राग-विस्तार में बार-बार लिया जाता है ।

आरोह-अवरोह

किसी स्वर से ऊपर के स्वर क्रमानुसार कहने को आरोह कहते हैं, जैसे—सा रे ग म प ध नि ।

किसी ऊपर के स्वर से नीचे के स्वर क्रमानुसार कहने को अवरोह कहते हैं, जैसे—सां नि ध प म ग रे सा ।

अर्थात् सप्तक के स्वरों की सीढ़ी पर चढ़ने को आरोह तथा उतरने को अवरोह कहते हैं ।

वक्र स्वर

आरोह अथवा अवरोह में किसी स्वर तक जाकर पीछे के स्वर पर लौट आते हैं परन्तु फिर पहले वाले स्वर को छोड़कर या टाल कर आगे के स्वर कहते हैं । यहाँ पर जिस स्वर तक जाकर पीछे लौटते हैं तथा जिसे फिर आगे बढ़ने पर टाल दिया

जाता है उसे वक्र स्वर कहते हैं। उदाहरण देने से यह बात स्पष्ट हो सकती है, जैसे—प ध नि ध सां यहाँ पर 'नि' स्वर तक जाकर लौट कर 'ध' स्वर पर आते हैं तथा फिर 'नि' को छोड़ते हुये आगे बढ़ते हैं। इसलिये 'नि' स्वर वक्र हुआ। ऊपर का उदाहरण आरोह में वक्र स्वर का है। इसी प्रकार अवरोह में भी वक्र स्वर हो सकता है जैसे—प म ग म रे सा। यहाँ पर 'ग' स्वर वक्र है क्योंकि इस स्वर से पीछे लौटते हैं और फिर इसे छोड़कर आगे बढ़ते हैं।

वर्ज्य स्वर

जो स्वर राग में प्रयोग नहीं किया जाता वह राग का वर्जित स्वर कहलाता है। वर्जित माने जो प्रयोग न किया जाय। उदाहरण के के लिये राग भूपाली में 'म' और 'नि' स्वर नहीं लगते। इस कारण 'म' और 'नि' स्वर राग भूपाली के वर्ज्य स्वर हुए। बहुत से रागों में कुछ ऐसे स्वर होते हैं जो आरोह में लगते हैं पर अवरोह में नहीं लगते। ये स्वर अवरोह में वर्ज्य होते हैं तथा आरोह में उनका प्रयोग होता है। इसी प्रकार राग के आरोह में कोई स्वर वर्ज्य हो सकता है और अवरोह में उसी स्वर का प्रयोग हो सकता है। जैसे राग खमाज के आरोह में 'रे' स्वर वर्ज्य है पर अवरोह में यह स्वर लगता है।

वादी स्वर

राग में एक ऐसा प्रबल स्वर होता है जिसका प्रयोग राग में अन्य सब स्वरों से अधिक होता है। गाने या बजाने में उस स्वर का प्रयोग बार-बार किया जाता है, जिससे राग स्पष्ट हो जाता है। राग के ऐसे स्वर को राग का वादी स्वर कहते हैं। 'वदति इति'

वादी' अर्थात् निम्नस्वर से राग की परम्परा होती है वही वादी स्वर कहा जाता है। वादी स्वर राग में बड़े महत्त्व का होता है। बहुत से ऐसे राग हैं जिनका स्वरूप एक सा है परन्तु वादी स्वर भिन्न होने से वे एक दूसरे से अलग तथा स्पष्ट हो जाते हैं। वादी स्वर को राग का प्रधान स्वर, जीव स्वर, अंश स्वर तथा राग का राजा आदि नामों से पुकारा जाता है। उदाहरण के लिये राग काफ़ी का वादी स्वर 'पंचम' है इसलिये इस में पंचम स्वर का विशेष महत्त्व है। वादी स्वर की उपमा राजा से दी गई है। जिस प्रकार किसी राज्य में राजा सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति होता है उसी प्रकार राग में वादी स्वर का महत्त्व है।

संवादी स्वर

जो स्वर राग में वादी स्वर की अपेक्षा कम तथा राग में लगने वाले अन्य सब स्वरों से अधिक प्रयोग किया जाता है, उसे संवादी स्वर कहते हैं। राग में वादी स्वर के बाद इस स्वर का महत्त्व होता है। इसलिये यदि राग रूपी राज्य में वादी राजा है तो संवादी स्वर राज्य का मन्त्री होगा क्योंकि राज्य में राजा के बाद मन्त्री का स्थान होता है।

वादी तथा संवादी स्वरों में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। अधिकतर वादी स्वर से चौथा अथवा पाँचवाँ स्वर संवादी स्वर होता है अर्थात् वादी-संवादी स्वर सदैव षड्ज-मध्यम अथवा षड्ज-पंचम भाव से होते हैं। षड्ज-मध्यम अथवा षड्ज-पंचम भाव का अर्थ यह हुआ कि यदि वादी 'सा' है तो संवादी 'म' होगा अथवा 'प' षड्ज-मध्यम भाव की जोड़ियाँ इस प्रकार हैं:—सा म, रे प, ग ध, म नि, प सां। सां प, नि म, ध ग, प रे, म सा। तथा षड्ज-पंचम भाव की जोड़ियाँ इस प्रकार हैं:—सा प, रे ध, ग नि, म सां। सां म, नि ग, ध रे, प

सा। इन जोड़ियों के अनुसार ही वादी-संवादी स्वर हुआ करते हैं। जैसे राग कल्याण में वादी गान्धार है तथा संवादी निषाद। यहाँ पर वादी-संवादी षड्ज-पंचम भाव से हैं। इसी प्रकार राग भैरवी में मध्यम वादी तथा षड्ज संवादी है। यहाँ पर वादी-संवादी षड्ज-मध्यम भाव से हुए।

अनुवादी स्वर

वादी तथा संवादी स्वरों को छोड़कर राग में लगने वाले अन्य सभी स्वर अनुवादी स्वर कहलाते हैं। उदाहरण के लिये राग कल्याण में वादी गान्धार है तथा संवादी निषाद है। इन दो स्वरों को छोड़कर बाकी सभी स्वर कल्याण राग के अनुवादी स्वर हैं। अर्थात् सा, रे, म, प, ध स्वर कल्याण राग के अनुवादी स्वर हैं। अनुवादी स्वरों को अनुचरों अथवा सेवकों की उपमा दी गई है। जिस प्रकार केवल राजा तथा मंत्री से किसी राज्य का कार्य नहीं चल सकता, उसे चलाने के लिये अनुचरों अथवा सेवकों की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार राग में वादी-संवादी के साथ अनुवादी स्वरों का महत्त्व है।

विवादी स्वर

कुछ स्वर ऐसे होते हैं जिनका प्रयोग राग में नहीं किया जाता तथा जिनको लगाने से राग की सुन्दरता बिगड़ने का डर रहता है। ऐसे स्वरों को राग के विवादी स्वर कहते हैं। इन स्वरों की उपमा राग के शत्रुओं से दी गई है। परन्तु विद्वान लोग कभी-कभी राग की सुन्दरता को बढ़ाने के लिये तथा चमत्कार दिखलाने के लिये बड़ी योग्यता पूर्वक राग में विवादी स्वरों का प्रयोग करते हैं। इन स्वरों का प्रयोग बहुत कम होता है लेकिन कुछ रागों में तो

विवादी स्वर अनुवादी स्वरों की तरह अपना लिये गये हैं, जैसे राग बिहाग में तीव्र मध्यम तथा केदार में कोमल निषाद आदि। विवादी स्वरों के लिये यह आवश्यक होना चाहिये कि उनका प्रयोग राग में न हो। परन्तु कभी कभी उनका प्रयोग योग्य रीति से सुन्दरता बढ़ाने के लिये हो सकता है। जैसे राग भैरवी में शुद्ध रे तथा तीव्र मध्यम का प्रयोग विवादी स्वरों की तरह किया जाता है।

गमक

विशेष रूप से स्वरों के हिलाने को गमक कहते हैं। गमक की परिभाषा ग्रन्थकारों ने इस प्रकार की है:—

“स्वरस्य कपो गमकः श्रोतृ चित्तं सुखावहः” अर्थात् स्वरों के हिलाने को गमक कहते हैं जो श्रोताओं को सुनने में अच्छा लगता है। संगीत के प्राचीन ग्रन्थकार गमक के १५ प्रकार मानते हैं जिनमें से कुछ का प्रयोग आधुनिक समय में भी, उनको दूसरे नाम दे कर होता है जैसे—मुर्की, मीड, खटका, जमजमा गिटकड़ी आदि। आजकल गमक शब्द का प्रयोग उन स्वरों के लिये किया जाता है जिन पर अधिक आन्दोलन होता है तथा जिनको गायक हृदय से निकालता है। गमक के प्रकारों का वर्णन पुस्तक के अगले भाग में किया जायेगा।

खटका तथा मुर्की

खटका तथा मुर्की गमक के प्रकार हैं जिन्हें हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में स्वतन्त्र नाम दे दिये गये हैं। खटका और मुर्की स्फुरित गमक (प्राचीन गमक का एक प्रकार) के अन्तर्गत आते हैं। गायन अथवा वादन में जब दो स्वरों को झटके के साथ गाते अथवा

बजाते हैं तब वह खटका कहलाता है । उदाहरण के लिये—
 सा (सा) = सा सा रे नि सा । अथवा सा रे सा नि सा । जब दो या

दो से अधिक स्वरों को खटके के साथ कहा जाता है तब मुर्की होती
 है जैसे:— रे सा नि अथवा सा रे सा नि रे सा नि सा रे आदि ।

खटके और मुर्की का प्रयोग अधिकतर ठुमरी, दादरा, टप्पा आदि में सुनने को मिलता है ।

कंपन

स्वरों के हिलाने को कंपन कहते हैं । कंपन गमक का एक प्रकार
 है जिसे कंपित गमक भी कहते हैं । कंपन में किसी विशेष स्वर को हिलाते रहते हैं ।

मींड

किसी निश्चित स्वर से दूसरे निश्चित स्वर तक घर्षण द्वारा आना
मींड कहलाता है । मींड में एक स्वर से दूसरे स्वर तक जाने के लिये
 बीच के स्वरों का केवल स्पर्श मात्र करते हैं तथा बीच के स्वरों को खींचते हुये निश्चित स्वर पर आ जाते हैं । मींड से रंजकता तथा कोमलता अधिक आ जाती है । यह भी प्राचीन गमक का एक प्रकार है । मींड को लिखने के लिये दो स्वरों के ऊपर बड़ा चांद बनाते हैं जैसे—प ग या सां प यहाँ प से ग कहने में म का स्पष्ट उच्चारण नहीं होगा परन्तु प से ग तक आवाज खींचने में म स्वर का स्पर्श हो जायेगा ।

स्पर्श स्वर (कण स्वर)

गायन अथवा वादन को श्रुति मधुर बनाने के लिये स्वरों के सूक्ष्म कणों का प्रयोग किया जाता है । मुख्य स्वरों पर अन्य स्वरों

का स्पर्श करने से मुख्य स्वरों की मधुरता बढ़ती है, जैसे धैवत मुख्य स्वर को कहने के लिये निषाद स्वर का केवल कण या स्पर्श धैवत स्वर की मधुरता को बढ़ा देता है। स्पर्श स्वर को कण स्वर (Grace-note) भी कहते हैं। यह स्वर गले के तैयार होने पर ही सरलता से निकलते हैं। लिखने के लिये इन स्वरों को मुख्य स्वरों के ऊपर लिखते हैं, जैसे— ग_५ प_५ ग।

ग्रह, अंश और न्यास स्वर

प्राचीन समय में आजकल की तरह गायन में स्वतन्त्रता नहीं थी। राग अनेक नियमों से बंधे हुये होते थे तथा इन नियमों के विरुद्ध गाया जाने वाला राग अशुद्ध कहलाता था। रागों को प्रारम्भ करने तथा उसका अन्त करने के लिये अलग-अलग निश्चित स्वर होते थे। ग्रह, अंश और न्यास स्वर भी प्राचीन काल में प्रचलित स्वर थे जिनका प्रयोग आधुनिक समय में नहीं होता। केवल अंश स्वर का प्रयोग आधुनिक समय में उसका नाम बदल कर वादी स्वर के नाम से होता है। ऊपर लिखे स्वरों की परिभाषा इस प्रकार है:—

ग्रह-स्वर:—प्राचीन समय में ग्रह उस स्वर को कहते थे जिससे राग गाना आरम्भ किया जाता था। प्रत्येक राग का एक निश्चित स्वर होता था जो ग्रह स्वर कहलाता था—राग को ग्रह स्वर से ही आरम्भ करते थे। आसावरी राग के लक्षण में लिखा है “मध्यम सुर ग्रह न्यास सु पंचम” अर्थात् मध्यम स्वर आसावरी राग का ग्रह स्वर है।

अंश-स्वर:—राग में जिस स्वर का प्रयोग सबसे अधिक होता था उसे राग का अंश स्वर कहते थे। आजकल इस स्वर को राग का

वादी स्वर करते हैं। उदाहरण के लिये राग कल्याण का अंश अथवा वादी स्वर 'गान्धार' है।

न्यास-स्वरः—प्राचीन समय में जिस स्वर पर राग की समाप्ति होती थी उसे राग का न्यास स्वर करते थे। प्रत्येक राग का न्यास स्वर ग्रह स्वर की तरह अलग होता था तथा राग का अन्त उसी स्वर पर होना आवश्यक था। आधुनिक समय में इस स्वर का प्रचार नहीं है। ऊपर दिये गये आसावरी के लक्षण के अनुसार आसावरी राग का न्यास स्वर 'पंचम' था।

आश्रय राग

प्रत्येक थाट से अनेक रागों की उत्पत्ति होती है तथा प्रत्येक राग किसी न किसी थाट से उत्पन्न होता है। इसी कारण थाट जनक होता है तथा राग जन्य।

यह एक प्रसिद्ध नियम है कि थाट का नाम उससे उत्पन्न किसी प्रसिद्ध राग के नाम पर रक्खा जाता है। इस प्रकार थाट का नाम करण स्वतन्त्र नहीं होता उसका सम्बोधन उसी से निकले प्रसिद्ध राग के नाम पर होता है। जिस राग का नाम थाट को दिया जाता है अथवा जिस राग के नाम से थाट पुकारा जाता है वह राग आश्रय राग कहलाता है।

उदाहरण देने से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी। सा रे ग म प ध नि, यह एक शुद्ध थाट है और इस थाट से राग बिलावल की उत्पत्ति होती है। बिलावल एक प्रसिद्ध राग है इसी लिये विद्वानों ने ऊपर लिखे स्वर समूह को बिलावल थाट के नाम से प्रसिद्ध किया है। यहाँ पर बिलावल राग आश्रय राग है। दूसरे शब्दों में थाट-वाचक राग ही आश्रय राग कहलाता है। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में १० थाट होने से कुल १० आश्रय राग हैं, जिनके

नाम—बिलावल, कल्याण, खमाज, काफी, भैरव, आसावरी, भैरवी मारवा, पूर्वी, नोड़ी हैं। आश्रय राग में एक विशेषता यह होती है कि उस थाट से निकले जितने भी राग होते हैं उन सब में आश्रय राग की थोड़ी बहुत छाया अवश्य आती है जैसे आश्रय राग काफी की छाया बागेश्री, भीमपलासी, सिन्दूरा आदि रागों में कुछ न कुछ अवश्य आती है।

रागों का समय

भारतीय रागों में यह विशेषता है कि उनके गाने अथवा बजाने का कोई निश्चित समय होता है। अपने निश्चित समय पर ही प्रत्येक राग आकर्षक तथा मधुर लगता है। बहुत से राग ऐसे होते हैं जो किसी विशेष मौसम या ऋतु में गाये और बजाते जाते हैं। जैसे वर्षा ऋतु में मल्हारों का गायन, वसंत ऋतु में बहार, वसंत आदि को गाने और बजाने में विशेष आनन्द आता है। इन रागों के गीतों में भी अधिकतर इन ऋतुओं का वर्णन रहता है। इन मौसमी रागों को उनकी उपयुक्त ऋतुओं में तो गाया ही जाता है परन्तु इसके आलावा इनको प्रत्येक मौसम में दिन या रात के किसी विशेष प्रहर में भी गाया और बजाया जाता है। दिन और रात को प्रहरों में बाँट दिया है तथा हिन्दुस्तानी प्रत्येक राग दिन अथवा रात के किसी विशेष प्रहर में गाया और बजाया जाता है। रागों के समय को निर्धारित करने के लिये कुछ नियम हैं जैसे, पूर्वराग-उत्तर राग, संधिप्रकाश राग, अध्वदर्शक स्वर आदि। इन नियमों में से नीचे पूर्वराग, उत्तरराग तथा संधिप्रकाश रागों का वर्णन किया जाता है।

पूर्वराग तथा उत्तरराग

विद्वानों ने सप्तक के ७ स्वरों को दो विभागों में बाँट दिया है।

T

पहला भाग 'सा' से 'म' तक अर्थात् 'सा रे ग म' तथा दूसरा 'प' से 'सां' तक अर्थात् 'प ध नि सां' है। इन्हीं दो विभागों को सप्तक का पूर्वांग और उत्तरांग कहते हैं।

इसी प्रकार दिन तथा रात के २४ घंटों को भी दो भागों में बाँट दिया है। पहला भाग पूर्वांग १२ बजे दिन से १२ बजे रात तक तथा दूसरा भाग उत्तरांग १२ बजे रात से दूसरे दिन के १२ बजे दिन तक होता है।

पूर्व रागः—जिन रागों के वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में अर्थात् 'सा रे ग म' स्वरों में होते हैं वे पूर्वांग-वादी-राग अथवा पूर्वराग कहलाते हैं। इन रागों के गाने का समय १२ बजे दिन से १२ बजे रात तक होता है। उदाहरण के लिये राग खमाज का वादी स्वर गान्धार है, इसलिये यह पूर्वराग हुआ और इसे १२ बजे दिन से १२ बजे रात के अन्दर ही गाया और बजाया जाता है।

उत्तररागः—जिन रागों के वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग अर्थात् 'प ध नि सां' स्वरों में होते हैं वे उत्तरांग-वादी-राग अथवा उत्तरराग कहलाते हैं। इन रागों के गाने का समय १२ बजे रात से १२ बजे दिन (दोपहर) तक होता है। उदाहरण के लिये राग भैरव में धैवत स्वर वादी है इसलिये यह उत्तरांग वादी या उत्तरराग है और इसके गाने का समय भी १२ बजे रात से १२ बजे दोपहर के अन्दर है।

परन्तु हिन्दुस्तानी अनेक राग इस नियम के अपवाद स्वरूप हैं। कहने का अर्थ यह है कि कुछ रागों के वादी स्वर तो पूर्वांग में हैं परन्तु उनके गाने का समय उत्तरांग में अर्थात् १२ बजे रात से १२ बजे दिन के अन्दर है। उदाहरण के लिये राग भैरवी में 'म' वादी है।

जो सप्तक के पूर्वांग में है परन्तु इसके गाने का समय सुबह का प्रथम प्रहर है जो उत्तरांग समय होता है। वास्तव में पूर्वांग वादी होने के कारण इस राग को १२ बजे दिन से १२ बजे रात के अन्दर हो गाना अथवा बजाना चाहिये। इसी प्रकार राग हमीर में धैवत स्वर वादी है जो सप्तक के उत्तरांग में है। परन्तु हमीर राग के गाने का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है जो पूर्वांग समय माना जाता है। इन सब अपवादों को देखते हुए विद्वानों ने सप्तक के पूर्वांग तथा उत्तरांग स्वरों का विस्तार कुछ बढ़ा दिया है। अब पूर्वांग को बढ़ाकर 'सा' से 'प' तक अर्थात् 'सा रे ग म प' कर दिया है तथा उत्तरांग को बढ़ाकर 'म' से 'सां' तक अर्थात् 'म प ध नि सां' कर दिया है। इस प्रकार मध्यम तथा पंचम स्वर सप्तक के दोनों विभागों में आ गये हैं। अब सप्तक का विभाजन इस प्रकार है:—

पूर्वांग	उत्तरांग
सा रे ग म प	म प ध नि सां

जिन रागों में मध्यम अथवा पंचम स्वर वादी होते हैं उनका समय बतलाने में कुछ कठिनाई पड़ती है क्योंकि ये स्वर दोनों विभागों के अन्तर्गत आते हैं। इसलिये ऐसे रागों का समय हमको मालूम कर लेना चाहिये।

संधिप्रकाश राग

जो राग दिन और रात की संधि बेला में गाये अथवा बजाये जाते हैं उन्हें संधिप्रकाश राग कह कर पुकारा जाता है। दिन और रात की संधि २४ घंटों में दो बार होती है। एक सुबह जब रात के बाद दिन निकलता है तथा दूसरी शाम को जब सूर्य डूबता है और रात आती है। संधिप्रकाश समय विद्वानों ने ४ बजे से ७ बजे तक

का माना है अर्थात् सुबह ४ बजे से ७ बजे तक तथा शाम को ४ बजे से ७ बजे तक का समय संधिप्रकाश समय माना जाता है। सुबह तथा शाम को ऐसे समय में गाये और बजाये जाने वाले राग ही संधिप्रकाश राग कहलाते हैं।

संधिप्रकाश रागों में विशेषता यह पाई जाती है कि उनमें ऋषभ और धैवत स्वर कोमल लगते हैं। यह विशेषता बहुत महत्त्वपूर्ण है, जैसे राग भैरव, कालिंगड़ा, पूर्वी आदि। इसके साथ ही इन रागों में गान्धार स्वर शुद्ध होना आवश्यक है। कुछ राग ऐसे हैं जो इस विशेषता के अपवाद स्वरूप हैं जैसे राग मारवा। इस राग में ऋषभ स्वर कोमल लगता है लेकिन धैवत स्वर शुद्ध है। इन अपवादों को देखते हुए कुछ विद्वानों ने संधिप्रकाश राग के लिए केवल ऋषभ स्वर का कोमल होना आवश्यक समझा है। धैवत स्वर कोमल हो अथवा शुद्ध परन्तु गान्धार स्वर को शुद्ध होना चाहिये।

अब हम कह सकते हैं कि संधिप्रकाश रागों में ऋषभ स्वर कोमल होना चाहिये और गान्धार स्वर शुद्ध होना चाहिये। धैवत स्वर कोमल हो सकता है अथवा शुद्ध। संधिप्रकाश रागों में ऋषभ स्वर वर्जित नहीं होता, क्योंकि इसी स्वर पर इन रागों का वर्गीकरण होता है। भैरव, पूर्वी तथा मारवा थाट के राग संधिप्रकाश रागों के अन्तर्गत आते हैं। उदाहरण के लिये सुबह के संधिप्रकाश राग भैरव, रामकली, परज, जोगिया, कालिंगड़ा, भैरव के अन्य प्रकार आदि हैं तथा शाम के संधिप्रकाश राग जैसे-पूर्वी, मारवा, पुरियाधनाश्री, पुरिया, श्री आदि हैं।



चतुर्थ अध्याय

गायन शैलियाँ

संगीत दो प्रकार का होता है (१) मार्गी संगीत और (२) देशी संगीत । मार्गी संगीत उसको कहते हैं जिसका प्रयोग गंधर्व अथवा देवता लोग करते हैं तथा जिसका उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है । इसे गंधर्व-संगीत भी कह कर पुकारते हैं परन्तु यह संगीत प्रचार में नहीं है । यहाँ पर हमारा विषय मार्गी संगीत न होकर देशी संगीत है । देशी संगीत उस संगीत को कहते हैं जो अनेक देशों में जनता की अभिरुचि पर निर्भर रहता है तथा जिसका मुख्य उद्देश्य जन-मन-रंजन अर्थात् जनता का मनोरंजन करना है । देशी संगीत को 'गान' कह कर भी पुकारते हैं । गान के दो भेद हैं (१) निबद्धगान और (२) अनिबद्धगान । निबद्धगान उसे कहते हैं जो ताल के साथ गाया और बजाया जाता है तथा अनिबद्धगान उसे कहते हैं जो बिना ताल के गाया और बजाया जाता है । कहने का अर्थ यह हुआ कि ताल के आधार पर देशी संगीत अथवा गान के दो भेद किये गये हैं पहला ताल-बद्ध तथा दूसरा ताल-रहित । प्राचीन काल में अनिबद्ध गान अथवा ताल रहित गान के अनेक प्रकार प्रचलित थे जिनका आज कल प्रचार नहीं है जैसे—आलापिगान, रूपकालाप, स्वरस्थान नियम इत्यादि । आधुनिक समय में किसी राग का गीत गाने के पहले जो आलाप बिना ताल के राग प्रदर्शन के लिये किये जाते हैं, वे अनिबद्ध गान के प्रचलित प्रकार हैं । प्राचीन काल में निबद्ध

गान के अन्तर्गत प्रबन्ध, वस्तु, रूपक आदि गीतों के प्रकार प्रचलित थे परन्तु आधुनिक समय में निबद्धगान अर्थात् तालबद्ध गान के अन्तर्गत ध्रुपद, धमार, खयाल, टप्पा, ठुमरी इत्यादि प्रचलित हैं।

इन गीतों को चार भागों में विभाजित किया जाता है और ये चार विभाग (१) स्थायी (२) अन्तरा (३) संचारी और (४) अभोग के नामों से पुकारे जाते हैं। परन्तु आधुनिक समय में कुछ ही ध्रुपद ऐसे सुनने में आते हैं जिनमें ये चारों विभाग हैं अन्यथा प्रत्येक गीत में स्थायी और अन्तरा ऐसे केवल दो ही विभाग होते हैं। जब से खयाल गायन का प्रचार हुआ है तभी से गीतों की रचनायें संक्षिप्त होने लगी हैं। प्रचीनकाल में गीतों को पाँच विभागों में बाँटा जाता था और वे विभाग इस प्रकार थे— (१) उद्ग्राह, (२) मेलोपक (३) ध्रुव (४) अन्तरा और (५) अभोग।

इस प्रकार हमने देखा कि गायन-शैलियों का अर्थ आधुनिक समय में प्रचलित गीतों के प्रकारों से है। प्रत्येक प्रकार के गीत को गाने का ढंग अलग-अलग है और इस प्रकार गाने के ढंग को ही गाने की शैली कहते हैं। उदाहरण के लिये ध्रुपद गायन की शैली, खयाल गायन की शैली, ठुमरी गायन की शैली इत्यादि। नीचे कुछ प्रचलित गायन-शैलियों को विस्तार पूर्वक दिया जाता है:—

ध्रुपद

ध्रुपद भारत वर्ष का एक प्रचीन गायन है। इसके आविष्कार के विषय में अभी विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि इस गायन का आविष्कार १५ वीं शताब्दि में ग्वालियर के राजा आलतोमर ने किया। परन्तु कुछ लोगों का विचार है कि ध्रुपद गायन

१५ वीं शताब्दी के पहले से इस देश में प्रचलित है। इन लोगों के विचार से ध्रुपद गायन का आविष्कार १३ वीं शताब्दी के लगभग हुआ। प्राचीन समय में ध्रुपद गायन को सबसे महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। अकबर बादशाह के दरबार में जितने भी उच्च गायक थे सत्र ध्रुपद गाते थे। इन गायकों में तानसेन सर्वोच्च था जो धृन्दावन के स्वामी हरिदास डागुर का शिष्य था। तानसेन के अतिरिक्त अन्य ध्रुपद गायक थे जिनमें नायक बैजू, चितामणी मिश्र, नायक गोपल आदि प्रसिद्ध थे। इनके रचे हुये ध्रुपद आज भी सुनने को मिलते हैं।

ध्रुपद गायन गम्भीरता प्रधान है। इसकी भाषा भी चञ्च कोटि की होती है। अधिकतर ब्रज, हिन्दी और उर्दू भाषा के ध्रुपद प्रचार में हैं। इस गायन में वीर, शांत और शृंगार रसों की प्रधानता होती है। ध्रुपद को चौताल, तीप्पा सूल्फाक, रुद्र, ब्रह्म आदि तालों में गाया जाता है। इस गीत को साधारणतः चार भागों में बाँटा गया है जो स्थायी, अन्तरा, संचारी और अभोग कहलाते हैं। प्रत्येक विभाग में चार अथवा चार से कम चरण होते हैं। परन्तु आजकल अधिकतर स्थायी और अन्तरा ऐसे दो भाग इस गीत में सुनने को मिलते हैं। स्थायी में गीत की स्वर रचना अधिकतर मन्द्र तथा मध्य सप्तक में होती है तथा अन्तरा में गीत की स्वर रचना अधिकतर मध्य और तार सप्तक के स्वरों में हुआ करती है। वास्तव में ऐसा कोई नियम नहीं है। ध्रुपद गायक गीत गाने के पूर्व बिना ताल के देर तक नौम, तौम में राग के आलाप करते हैं। खटके, मुर्की, तान आदि का प्रयोग इस गायन में नहीं होता परन्तु कण, मीढ़, गमक आदि की शोभा इस गायन में होती है। लयकारियों का सुन्दर रूप देखने को मिलता है। दून, तिगुन, चौगुन, अठगुन, आड़, सम, विसम, अतीत, अनागत आदि से ध्रुपद गायन की शोभा बढ़ती

है। कभी-कभी लयकारियों के साथ बोलताने भी ली जाती है। ध्रुपद की संगत पखावज पर की जाती है।

धमार

धमार नामक ताल में गाई जाने वाली होली को 'धमार' कह कर पुकारते हैं। धमार ताल १४ मात्राओं का होता है और इस ताल में जो गीत गाया जाता है उसे 'धमार' कहते हैं। इस गीत में अधिकतर होली सम्बन्धी शब्द होते हैं अर्थात् राधाकृष्ण और कृष्ण-गोपियों के फागुन मास की लीलाओं का वर्णन इन गीतों में होता है। ध्रुपद गायक ही अधिकतर इस गीत को गाते हैं क्योंकि जिस प्रकार ध्रुपद की गायकी है उसी प्रकार इसे भी गाते हैं। केवल अन्तर यह है कि ध्रुपद धमार से कुछ अधिक गम्भीर होता है। ध्रुपद की तरह इस गीत की भाषा भी ब्रज, हिन्दी अथवा उर्दू होती है। इस गायन में ध्रुपद की तरह दून, तिगुन, चौगुन, आड़ आदि विभिन्न प्रकार की लयकारियों का चमत्कार सुनने को मिलता है। कभी-कभी बोलतानों का भी प्रयोग अनेक लयों के साथ होता है। धमार ताल कुछ कठिन होने के कारण प्रारम्भिक विद्यार्थियों को इस गीत के गाने में कुछ कठिनाई पड़ती है। इस गीत में स्थायी और अन्तरा ये दो भाग होते हैं। इस गायन में अधिकतर श्रृ गार रस की प्रधानता होती है।

होली

ख्याल गायक जब होली सम्बन्धी गीतों को विभिन्न तालों में गाते हैं तब वह गीत 'होली' कहलाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि होली नामक गीत, जिसमें राधाकृष्ण और कृष्ण-गोपियों की फागुन मास की लीलाओं का वर्णन होता है जब धमार ताल में गाया जाता है तब 'धमार' कहलाता है तथा जब खयाल गायक उसे

त्रिताल, दोपचम्पी, कहरवा आदि तालों में गाते हैं तब उसे 'होली' कहते हैं। धमार तथा होनी में बहुत अन्तर होता है। इन दोनों की गायन शैलियाँ अलग-अलग हैं। होली में तान, आलाप, पल्लवे, खटके, मुक्री आदि का प्रयोग ख्याल गायन की तरह होता है। इस गीत के स्थायी और अन्तरा ये दो भेद होते हैं। इन गीतों को हम मौसमी गीत कह सकते हैं क्योंकि 'होली' को अधिकतर फागुन में तथा होली के अवसर पर ही गाया जाता है।

ख्याल

'ख्याल' शब्द फ़ारसी भाषा का है इसका अर्थ 'कल्पना' अथवा 'विचार' है। साधारण तौर पर रागों के नियमों का पालन करते हुए गाने वाला जब अपनी कल्पना से तथा अभ्यास से आलाप, तान, ताल आदि से सजा कर जो गीत गाता है, उसे ख्याल कहते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ख्याल गायन की वह शैली है जिसमें गायक एक गीत को विभिन्न तान, आलाप, ताल, खटका मुक्री, अलंकारों आदि से सजाकर एक नया मनोहर रूप प्रदान करता है। इस गायन में स्वतन्त्रता अधिक होती है। ख्याल दो प्रकार के होते हैं :—

विलंबित ख्याल (बड़ा ख्याल):—

कहते हैं कि इस गायन का आविष्कार १५ वीं शताब्दी में जौनपुर के बादशाह सुलतान हुसैन शर्की ने किया तथा उन्होंने इस गायन को सर्व प्रथम लोकप्रिय बनाया। सदारंग और अदारंग दो भाई जो मुगलकाल के अन्तिम बादशाह मुहम्मद शाह (१७१६-१७४०) के दरबार में नौकर थे इस क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने हजारों ख्याल अनेक रागों में बनाये तथा अपने शिष्यों को

सिखलाये परन्तु ये दोनों भाई खयाल कभी नहीं गाते थे क्योंकि खयाल-गायन उस समय कोई उच्च गायन नहीं समझा जाता था। खयाल गायकों का आदर भी नहीं होता था। इसलिये दोनों भाई ध्रुपद ही गाते थे जो सर्वश्रेष्ठ गायन माना जाता था। ग्वालियर के हहू, हस्तू तथा नत्थू खाँ ने भी खयाल गायन का बहुत प्रचार किया। इनकी शिष्य परम्परा सदारंग और अदारंग से मानी जाती है।

यह गायन विलंबित लय में होता है। इसके गीत को स्थायी और अन्तरा इन दो भागों में बाँटा गया है। इस गायन की प्रकृति गम्भीर होती है पर ध्रुपद, धमार की तरह नहीं। सुक्री, मीढ़, तान, पल्ले, बोलतान, बहलावे आदि का प्रयोग इस गायकी में सुन्दरता प्रदान करता है। पहिले बराबर की तान लेते हैं फिर दून, चौगुन और अठगुन की तानें लते हैं। विभिन्न प्रकार की तानें इस गायकी में सुनने को मिलती हैं जैसे—सपाटतान, कूटतान, छूट की तान गमक की तान, आलंकारिक तान, फिरत की तान इत्यादि। इस गायकी के गीतों में अधिकतर कृष्ण लीलाओं का वर्णन, उत्सव-प्रसंग, श्रुतु-वर्णन, सृष्टि-सौंदर्य अथवा शृंगारिक वर्णन होता है। इस गायकी में शृंगार रस, शांत रस अथवा करुण रस की प्रधानता होती है। अधिकतर इस गीत में विलंबित तालों का प्रयोग होता है जैसे—एकताल, मूमरा, तिलवाड़ा, आड़ा चौताल, धीमा त्रिताल इत्यादि। प्राचीन काल में जिस प्रकार ध्रुपद गायन का प्रचार था उसी प्रकार आधुनिक काल में खयाल गायन बहुत लोक-प्रिय हो गया है।

द्रुत खयाल (कच्वाली खयाल अथवा छोटा खयाल):—

इस गीत की उत्पत्ति १४ वीं शताब्दि में अमीर खुसरू द्वारा मानी जाती है। लोगों का कहना है कि अमीर खुसरू ने सर्व प्रथम

कठवाली ख्याल का प्रचार किया और उसी को आजकल हुत अथवा छोटा ख्याल कह कर पुकारते हैं। इसलिये बहुत से कठवाल अपना सम्बन्ध अमीर ख़ुसरू से लगाते हैं।

इस गीत की रचना बड़े ख्याल की तरह संक्षिप्त होती है अर्थात् इस गीत की कविता बहुत छोटी होती है। स्थायी तथा अन्तरा ऐसे दो भाग होते हैं। इन गीतों में शृंगार अथवा करुण रस प्रधान होता है। इसकी गायन-शैली बड़े ख्याल की तरह होती है तथा तान, आलाप, खटका, मुर्की, अलंकार, बोलतान, बोल आलाप आदि का प्रयोग होता है। बड़े ख्याल तथा छोटे ख्याल में सबसे बड़ा अन्तर लय का है। बड़े ख्याल की लय विलंबित होती है तथा छोटे ख्याल की लय मध्यम अथवा हुत होती है। इस गीत में एक ताल त्रिताल, रूपताल, तोवरा, आदि मध्यलय के तालों का प्रयोग होता है। सदारंग तथा अदारंग के रचे बहुत से ख्याल सुनने में आते हैं। ख्याल गायन की लोक-प्रियता दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है।

टप्पा

टप्पा गायन का प्रचार सर्व प्रथम गुलाम नबी शौरी ने किया। इसलिए इन्हें इसका आविष्कारक मानते हैं। टप्पा गायन की शैली ख्याल तथा ध्रुपद दोनों से ही अलग होती है। इसमें गीत के शब्द बहुत कम होते हैं तथा स्थायी और अन्तरा ऐसे दो भाग होते हैं। इस गीत की रचना अधिकतर पंजाबी भाषा से होती है। इस गायन की क्षुद्र प्रकृति मानी जाती है इसमें शृंगाररस प्रधान होता है। क्षुद्र प्रकृति के राग जैसे—काफी, भैरवी, खमाज, फिफोटी, पीलू—आदि में इसे गाया जाता है। इस गायन में एक विशेष प्रकार का ताल प्रयोग में लाया जाता है जिसे टप्पा ताल कह

कर पुकारते हैं। खयाल की तरह इसके खटमें, मुक्रीं, मीड, तान आदि का सुन्दर रूप देखने को मिलता है। परन्तु इसकी तानें खयाल की तरह न होकर चपल तथा पेंचदार होती हैं। तानों को गले के तैयारी के साथ अनेक टुकड़ों पर रुक रुक कर कहा जाता है। इस प्रकार तानों का इसमें विशेष प्रयोग होता है और बड़े अभ्यास के बाद ही इस गायकी को अपनाया जा सकता है। इस गायकी का प्रचार पंजाब में अधिक है। ध्रुपद, धमार गाने वालों के इस गायन में अद्वचन मालूम पड़ती है परन्तु आधुनिक समय में एक ही गायक खयाल, धमार ध्रुपद, ठुमरी टप्पा आदि विभिन्न प्रकार की गायन-शैलियों को गाता है।

ठुमरी

ठुमरी गायन के आविष्कार के विषय के अभी कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वानों का विचार है कि इसका आविष्कार लखनऊ में हुआ, पर किसने किया यह नहीं कहा जा सकता। इसका प्रचार लखनऊ के नवाबों के दरबार में खूब हुआ और सम्भव है उसी समय इसका आविष्कार भी हुआ हो।

यह गायन अत्यन्त मधुर तथा रसीला होता है। इसमें गीत बहुत संक्षिप्त होता है जिसके स्थायी और अन्तरा ऐसे दो भाग होते हैं। इसको क्षुद्र प्रकृति का गायन समझा जाता है। परन्तु यह गायन बहुत लोकप्रिय है। क्षुद्र प्रकृति के रागों जैसे—काफी, खमाज तिलक कामोद, पीलू भिमांटी, तिलंग, बरवा, मांज, तिलक बिहार आदि में इसे गाते हैं। इस गायन में राग की शुद्धता पर ध्यान नहीं दिया जाता तथा गायक जान बूझ कर भिन्न-भिन्न रागों का मिश्रण करके अपने गायन को मधुर बनाता है। इस गायन में मुक्री

खटका, पल्टा, छोटी-छोटी साने, बोल तान, बील-आलाप आदि सुन्दरता प्रदान करते हैं। छोटी-छोटी साने तथा बोल आलाप मल को हरने वाले होते हैं। गायक गीत के शब्दों को अनेक भावों के साथ स्वर के माध्यम से व्यक्त करता है। इस गायन में पंजाबी तथा दीपचंदी तालों का प्रयोग अधिक होता है परन्तु त्रिताल, कहरवा आदि में भी ठुमरियाँ गाई जाती हैं। ठुमरी में शृंगार रस की प्रधानता होती है। इस गीत में अधिकतर राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन, बिरह का वर्णन अथवा नख-शिख वर्णन होता है। कुल तीन प्रकार की ठुमरियाँ सुनने में आती हैं। (१) लखनऊ की ठुमरी (२) बनारसी ठुमरी (३) पंजाबी ठुमरी। पंजाबी ठुमरी में टप्पा का अंग देखने को मिलता है।

ठुमरी गायन का प्रचार बहुत हो रहा है तथा इससे मनोरंजन भी खूब होता है।

सरगम

किसी राग के स्वरों की मधुर रचना, जो किसी ताल में बंधी होती है, सरगम कहलाती है। सरगम भिन्न-भिन्न तालों में गाई जाती है जैसे—त्रिताल, रूपताल, एकताल इत्यादि। सरगम के दो भाग होते हैं जो स्थायी और अन्तरा कहलाते हैं। राग को सीखने के पहिले उसका सरगम अवश्य सीखना चाहिए। इससे राग में लगने वाले स्वरों का ज्ञान होता है। सरगम को स्वर मालिका या सुरावर्ष आदि नामों से पुकारा जाता है।

लक्षण गीत

जिस गीत में राग के लक्षणों का वर्णन होना है उसे राग का लक्षण गीत कहते हैं। लक्षण गीत की रचना छोटे खयाल की तरह

होती है और जिन तालों में मध्यलय के खयाल गाये जाते हैं उन्हीं में लक्षण गीत भी गाये जाते हैं। इस गीत में राग में लगने वाले स्वर, राग के वादी-संवादी स्वर, राग का समय, राग की जाति आदि सब बातों का वर्णन होता है। इस गीत की रचना राग के स्वरों में ही होती है। इसके स्थायी और अन्तरा ऐसे दो भाग होते हैं। राग को सीखने के लिये उसका लक्षण गीत याद किया जाता है जिससे राग की जानकारी प्राप्त हो जाती है।

तराना

तराना भी एक प्रकार का आधुनिक गायन है। इसमें गीत के स्थान पर ओढ़ नी, दीम, तन न न, ता, ना, दिर, दिर, आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। कभी-कभी सरगम, तबला अथवा सृदंग के बोलों का भी प्रयोग इस में होता है। अधिकतर तीन ताल, एक ताल अथवा ऋषताल में तराने गाये जाते हैं। तरानों की लय द्रुत होती है। लय का महत्त्व इस गायन में अधिक होता है। द्रुत लय में अर्थहीन बोलों को कहने में अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। तराने की लय धीमे धीमे बढ़ाते जाते हैं। द्रुत लय में तानों का प्रयोग बहुत भला मालूम पड़ता है। कुछ लोग द्रुत-लय में सितार के बोलों को मुंह से कहते हैं तराने के बोल अर्थहीन होने से इस गायन में स्वर तथा लय की प्रधानता है। इसके दो भागों में बाँटा गया है जो स्थायी और अन्तर्ग कहलाते हैं। खयाल गायक अधिकतर खयाल गाने के बाद द्रुत लय में राग का तराना शुरू कर देते हैं जो बहुत सुन्दर लगता है। बहादुर हुसेन खाँ, तानरस खाँ तथा नत्थू खाँ के तराने प्रसिद्ध हैं।

गज़ल

इस गीत की रचना अधिकतर उर्दू अथवा फारसी भाषा में

होती है। इस को ख्याल, ध्रुपद आदि की तरह उच्च गायन न मान कर क्षुद्र प्रकृति का मानते हैं। जिन रागों में ठुमरी, टप्पा आदि गाते हैं उन्हीं रागों में गजल गाते हैं। इस गीत में प्रधान रस शृंगार होता है। अधिकतर दीपचंदी, दादरा, तीवरा, अथवा पश्तो आदि तालों में इसे गाते हैं, इस गीत में कई अन्तरे होते हैं और अधिकतर प्रत्येक अन्तरे की स्वर रचना समान होती है। शब्द रचना उर्दू या फारसी में होते हुए भी उच्च होती है जिससे सुनने वालों को कविता का आनन्द आता है। इसलिए इस गीत को शब्द प्रधान कहा जा सकता है। इसमें राग की शुद्धता पर ध्यान नहीं दिया जाता।

भजन और गीत

संगीत में भजन भी एक प्रकार का गायन होता है। आजकल इस गायन का प्रचार खूब हो रहा है। जिस प्रकार गजल शब्द प्रधान होते हैं उसी प्रकार हिन्दी में भजन भी शब्द प्रधान होते हैं। इसमें राग की शुद्धता पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता तथा मुख्य उद्देश्य परमात्मा की स्तुति करना होता है। अधिकतर बहरवा, दादरा, तीवरा, रूपक, तीनताल आदि तालों का प्रयोग भजनों में किया जाता है। इस गीत के कई चरण होते हैं। इसमें भक्ति रस प्रधान होता है। अधिकतर मीराबाई, कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास आदि भक्त कवियों के भजन सुनने को मिलते हैं। इन भजनों को गायक सुन्दर स्वर रचनाओं सहित गाते हैं।

परमात्मा की लीलाओं का वर्णन छोड़कर जो गीत आज सुनने में आते हैं उन्हें 'गीत' कहकर पुकारते हैं। सुन्दर-सुन्दर कविताओं को स्वरों तथा तालों में बाँध कर आनन्द प्राप्ति के लिये इसका गायन

होता है। आज कल रेडियो पर यह गायन बहुत सुनने को मिलता है। अधिकतर श्री सुमित्रानन्दन पंत, डा० रामकुमार वर्मा, कविवाचस्पति श्रीमती महादेवी वर्मा आदि कवियों के गीत अनेक सुन्दर स्वर रचनाओं के साथ सुनने को मिलते हैं। आधुनिक गीतों में शृंगार प्रधान होता है। इस गायन को भाव-संगीत (Light Music) कहते हैं।



पंचम अध्याय

ताल विभाग

संगीत में ताल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सारा संगीत ताल पर आधारित है। 'संगीत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ में लिखा है :—
 "गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्"। अर्थात् गायन, वादन तथा नृत्य ताल से ही शोभा पाते हैं। नीचे ताल के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या की जाती है :—

काल

गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों कलाओं की क्रियाओं में जो समय लगना है उसे काल कहते हैं। उदाहरण के लिये यदि कोई गायक एक घंटे तक गाता है तो यह समय 'काल' कहलायेगा। इस काल को नापने के लिये जो साधन अथवा पैमाना होता है उसे ताल कहते हैं

ताल

गाने, बजाने तथा नाचने की क्रिया में जो समय लगता है अर्थात् 'काल' के नापने के पैमाने को ताल कहते हैं। ताल एक ऐसा माध्यम है, एक ऐसा साधन है जिससे गाने बजाने तथा नाचने की क्रियाओं में लगते हुये समय को नापा जाता है। ताल के दस

प्राण माने गये हैं। ये प्राण ताल के अंग कहे जा सकते हैं जो—
काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति और प्रस्तार हैं।

लय

गाने, बजाने अथवा नाचने की क्रियाओं की चाल या गति को लय कहते हैं। कहने का अर्थ यह है कि जो भी गायन अथवा वादन होता है उसकी एक समान चाल होती है उसी चाल को लय कहते हैं। लय तीन प्रकार की होती है:—

(१) विलंबित लय

(२) मध्यलय

(३) द्रुत लय

विलंबित लय:—बहुत धीमी चाल या गति को विलंबित लय कहते हैं। इसे ठाढ़ लय कह कर भी पुकारते हैं। गायन में बड़े खूबल, ध्रुपद धमार आदि इसी लय में गाये जाते हैं। विलंबित लय के कुछ ताल जैसे—मूमरा, आड़ाचौताल, तिलवाड़ा, एकताल इत्यादि हैं।

मध्यलय:—साधारण लय, जो न अधिक धीमी होती है और न अधिक तेज होती है, मध्यलय कहलाती है। मध्यलय की तुलना हम घड़ी के हर सेकण्ड के टिक-टिक की चाल से कर सकते हैं। गायन में छोटा खयाल, गीत, भजन आदि इसी लय में गाये जाते हैं। इस लय की तालें जैसे—त्रिताल, रूपताल, दादरा इत्यादि हैं।

द्रुतलय:—मध्यलय से दुगनी जल्दी लय को द्रुत लय कहते हैं। गायन में तराने, छोटे खयाल आदि इसी लय में गाये जाते हैं। मध्यलय की तालों की गति तेज करके इस लय में बजाते हैं।

मात्रा

लय अथवा ताल नापने के साधन को मात्रा कहते हैं। मात्रा एक ऐसी इकाई है जिससे ताल की पूर्ति होती है। मात्राओं के समूह से ही ताल की उत्पत्ति होती है, जैसे ६ मात्राओं से ताल दादरा बनता है। यही मात्राएँ बिलंबित लय में अधिक समानान्तर पर, मध्यलय में साधारण समानान्तर पर तथा द्रुत लय में कम समानान्तर पर होती है। समझने के लिये हम घड़ी के हर से रुन्ड में होने वाले टिक-टिक को मात्राएँ कह सकते हैं जो एक निश्चित गति से होते रहते हैं। जिस प्रकार ६० सेकंडों से एक मिनट बनता है उसी प्रकार विभिन्न मात्राओं के समूहों से ताल बनते हैं।

आवर्तन

किसी ताल की सम्पूर्ण मात्राओं अथवा सम्पूर्ण बोलों के समूह को आवर्तन कहते हैं। उदाहरण के लिए ऋपताल में १० मात्राएँ होती हैं इन १० मात्राओं को एक बार कहने से ऋपताल का एक आवर्तन होता है। एक आवर्तन समाप्त होने पर ताल का दूसरा आवर्तन चलता है और इसी प्रकार आवर्तनों का क्रम चलता रहता है। ऋपताल का एक आवर्तन इस प्रकार होगा:—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धी	नी	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
×		२			०		३		

ठेका

किसी ताल के एक आवर्तन के बोलों के समूह को जो ताल-वाद्य पर बजाये जाते हैं, ठेका कहते हैं। तबले अथवा ताल वाद्य

पर ताल के बोल बजाये जाते हैं और इन्हीं बोलों को ताल का ठेका कहते हैं। उदाहरण के लिये ताल त्रिताल का ठेका यह है :—

धा धि धि धा	धा धि धि धा	धा ति ति ता	ता धि धि धा
×	२	०	३

सम

जिस मात्रा से ताल आरम्भ होता है अथवा जिस मात्रा से ताल किसी वाद्य पर बजाया जाता है उस मात्रा को उम ताल का सम कहते हैं। बहुधा ताल की पहली मात्रा पर सम होता है। सम पर एक विशेष प्रकार का जोर दिया जाता है जिससे अन्य मात्राओं में उसे पहिचानने में आसानी होती है। गायन में भी गायक गीत का सम दिखाने के लिये जोर लगाकर अथवा सिर हिलाकर उसे स्पष्ट करता है !

खाली

सम के बाद ताल में दूसरा स्थान खाली का होता है। जिस मात्रा पर ताली नहीं पड़ती अथवा बाँये तबले पर खुला हाथ दिखाकर जो मात्रायें बजाई जाती हैं वह ताली का स्थान होता है। अधिकतर खाली का स्थान ताल की मात्राएँ के लगभग बीच में पड़ता है, जैसे ताल त्रिताल में १६ मात्राओं होती हैं तथा खाली का विभाग ६ वीं मात्रा पर है।

ताली

सम के अतिरिक्त ताल में जिन-जिन मात्राओं पर तालियाँ पड़ती हैं वे ताली अथवा भरी कहलाती हैं। उदाहरण के लिये ताल त्रिताल

में पहली मात्रा पर सम है तथा ६ वीं मात्रा पर खाली है। इसलिये ५ वीं तथा ११ वीं मात्राओं पर इस ताल की तालियाँ पड़ती हैं।

लयकारियाँ

संगीत में विलंबित, मध्य तथा द्रुत लयों के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार की लयकारियाँ होती हैं। गायन में इन लयकारियों का आनन्द ध्रुपद धमार में आता है अथवा वाद्यों पर विभिन्न प्रकार की लयकारियों से श्रोताओं को आकर्षित किया जाता है। उदाहरण के लिये ठाह, दुगुन, तिगुन, चौगुन, आढ़, अठगुन, सबाई, कुआढ़ बिआढ़ इत्यादि लयकारियाँ अधिक प्रचलित हैं। नीचे कुछ लयकारियों की व्याख्या का जाती है :—

ठाहलयः—जिस लय में एक मात्रा पर एक शब्द अथवा अंक बोला जाय या दिखाया जाय उसे ठाह लय कहते हैं। कहने का अर्थ यह हुआ कि ठाहलय में प्रत्येक मात्रा पर एक अंक होता है। इसे बराबर की लय भी कहते हैं, जैसे—

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८

दुगुनः—ठाहलय में जिस प्रकार एक मात्रा में एक अंक कहते हैं, दुगुन की लय में समानान्तर पर एक मात्रा में दो अंक बोलते हैं। अर्थात् ठाह की दुगुनी तेज लय को दुगुन की लय कहते हैं और इस लय में ठाह लय की एक मात्रा में दो अंक बोलना या दिखाना पड़ता है जैसे :—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

तिगुनः—ठाहलय की एक मात्रा में तीन अंक या शब्द कहने का नाम।

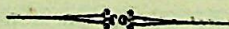
से तिगुन की लय होती है अर्थात् जिस प्रकार ठाढ़लय में एक मात्रा पर एक अंक दिखाते हैं उसी प्रकार तिगुन में समानान्तर पर एक मात्रा में तीन अंक दिखाते हैं जैसे:—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२

चौगुन:—ठाढ़लय की एक मात्रा में चार अंक या शब्द बोलने से चौगुन की लय होती है अर्थात् जिस प्रकार ठाढ़लय में एक मात्रा पर एक अंक दिखाते हैं उसी प्रकार चौगुन में समानान्तर पर एक मात्रा में चार अंक दिखाते हैं जैसे:—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

इसी प्रकार छः गुन, अठगुन आदि लयकारियाँ हो सकती हैं। छः गुन में ठाढ़ की एक मात्रा में ६ अंक बोले जायेंगे तथा अठगुन में एक मात्रा में ८ अंक बोले जायेंगे। अन्य कठिन लयकारियाँ जैसे—आड़, आड़ की उल्टी, कुआड़, विआड़ आदि की पुस्तक के अगले भाग में समझाया जायगा।



षष्ठ अध्याय

तालों का वर्णन

नीचे कुछ प्रमुख तालों के ठेके तथा उनका विवरण दिया जाता है। इन तालों में प्रयोग होने वाले चिह्न भारतखण्डे पद्धति के अनुसार इस प्रकार हैं—

× सम।

० खाली।

उ अवग्रह।

धागे—एक मात्रा में दो बोल।

धागेतिट—एक मात्रा में चार बोल।

तालियों के स्थान पर तालों की संख्या।

ताल-कहरवा

इस ताल में ४ मात्राएँ होती हैं। एक विभाग होता है और पहली मात्रा पर सम होता है।

मात्रा—	१	२	३	४
बोल—	धागि	नति	नक	धिन्
ताल—	×			

(६८)

कुछ लोग ताल कहकरवा जे द मात्राएँ मानते हैं, जो इस प्रकार है:—

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८
बोल—	धा	गि	न	ति	न	क	धि	न
ताल—	X		२		०		३	

ताल-दादरा

६ मात्राएँ होती है, ३-३ मात्राओं पर विभाग बनते हैं। कुल दो विभाग होते हैं जिनमें एक ताली और एक खाली होती है। पहली मात्रा पर सम तथा चौथी मात्रा पर खाली।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६
बोल—	धा	धी	ना	धा	ती	ना
ताल—	X			०		

कुछ लोग इसके बोल इस प्रकार मानते हैं:—

मात्रा—	१	३	२	४	५	६
बोल—	धी	धी	ना	ती	ती	ना
ताल—	X			०		

ताल-तीवरा

७ मात्राएँ होती हैं, ३ विभाग होते हैं जो ३-२-२ मात्राओं के होते हैं। पहली मात्रा पर सम और चौथी तथा छठवीं मात्रा पर-दूसरी और तीसरी तालियाँ पड़ती हैं। खाली नहीं होती।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७
बोल—	धा	दि	ता	तिट	कत	गद	गिन
ताल—	X			२		३	

कुछ लोग इस ताल के बोल इस प्रकार मानते हैं:—

मात्रा—	१	०	६	४	५	६	७
बोल—	धी	धी	ना	धी	ना	धी	ना
ताल—	X			२		३	

T

ताल-रूपक

७ मात्राएँ होती हैं, ३ विभाग होते हैं जो ३-२-२ मात्राओं के होते हैं। पहला विभाग खाली तथा बाद के दो भरे होते हैं। पहली मात्रा पर सम और खाली पड़ती है तथा ४थी व ६वीं मात्राओं पर तालियाँ। यह ताल तीव्रता की तरह होता है केवल अन्तर यह है कि इसमें पहला विभाग खाली का होता है जब कि तीव्रता ताल में खाली नहीं होती।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७
बोल—	धी	धा	त्रक	धी	धी	धा	त्रक
ताल—	०			२			
	×						३

कुछ लोग सरलता के लिये इस ताल के बोल इस प्रकार मानते हैं:—

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७
बोल—	ती	सी	ना	धी	ना	वी	ना
ताल—	०			२			३
	×						

ताल धुमाली

८ मात्राएँ होती हैं। ४ विभाग होते हैं जो २-२ मात्राओं पर पड़ते हैं। तीन तालो और एक खाली, पहली मात्रा पर सम पाँचवीं पर खाली तथा तीसरी और सातवीं पर तालियाँ पड़ती हैं धुमाली ताल को कहरवा का एक प्रकार माना जाता है।

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८
बोल—	धि	धि	धा	ति	तक	धि	धागे	त्रक
ताल—	×		२		३			०

भूपताल

१० मात्राएँ होती हैं ४ विभाग होते हैं जो २-३-२-३ मात्राओं के होते हैं । ३ ताली और एक खाली होती है । पहली मात्रा पर सम, छठवीं पर खाली तथा तीसरी और आठवीं मात्राओं पर तालियाँ पड़ती हैं ।

मात्रा—	१ २	३ ४ ५	६ ७	८ ९ १०
बोल—	धी ना	धी धी ना	ती ना	धी धी ना
ताल—	×	२	०	३

सूल-ताल (सूलफाक)

१० मात्राएँ होती हैं ५ विभाग जो २-२ मात्राओं पर पड़ते हैं । ३ ताली और २ खाली, पहली मात्रा पर सम तथा तीसरी और नवीं मात्राओं पर खालियाँ तथा पाँचवीं और सातवीं मात्राओं पर तालियाँ पड़ती हैं ।

मात्रा—	१ २	३ ४	५ ६	७ ८	९ १०
बोल—	धा धा	दि ता	किट धा	तिट कत	गद गिन
ताल—	×	०	२	३	०

एकताल

१२ मात्राएँ होती हैं, ६ विभाग हैं जो २-२ मात्राओं पर पड़ते हैं । ४ ताली और २ खाली, पहली मात्रा पर सम, तीसरी और सातवीं मात्राओं पर खालियाँ तथा पाँचवीं, नवीं और ग्यारहवीं मात्राओं पर तालियाँ पड़ती हैं ।

एक ताल के दो रूप प्रचलित हैं पहला मध्य अथवा द्रुत लय होता है:—

मात्रा—१ २	३ ४	५ ६	७ ८	९ १०	११ १२
बोल—धि धि	धा त्रक	तू ना	क ता	धि त्रक	धी ना
ताल—X	०	२	०	३	४

एक ताल का दूसरा रूप चिलंबित लय का होता है। अधिकतर पड़े ख्यालों में इसका प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—१ २	३ ४	५ ६	७ ८	९ १०	११ १२
बोल—धि धि	धागे तिरकिट	तू ना	क ता	धागे तिरकिट	धी ना
ताल—X	०	२	०	३	४

चारताल

१२ मात्राएँ होती हैं, ६ विभाग जो २-२ मात्राओं पर पड़ते हैं। ४ ताली और २ खाली। पहली मात्रा पर सम, तीसरी और सातवीं मात्राओं पर खालियाँ तथा पाँचवीं, नवीं, ग्यारहवीं मात्राओं पर तालियाँ पड़ती हैं। इस ताल की मात्राएँ एक ताल के समान हैं पर बोलों में अन्तर है।

मात्रा—१ २	३ ४	५ ६	७ ८	९ १०	११ १२
बोल—धा धा	दिं ता	किट धा	दिं ता	किट तक	गढ़ गिन
ताल—X	०	२	०	३	४

कुछ लोग इस ताल के बोल इस प्रकार मानते हैं:—

मात्रा—१ २	३ ४	५ ६	७ ८	९ १०	११ १२
बोल—धा धा	थुं गा	किट तक	थुं गा	किट तक	गढ़ गिन
ताल—X	०	२	०	३	४

ताल दीपचंदी

१४ मात्राएँ होती हैं, ४ विभाग जो ३-४-३-४ मात्राओं के होते हैं। ३ ताली तथा १ खाली। पहली मात्रा पर सम, आठवीं मात्रा पर खाली तथा चौथी और ग्यारहवीं मात्राओं पर तालियाँ पड़ती हैं। इस ताल को कुछ लोग 'चाचर' कह कर पुकारते हैं।

मात्रा—१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
बोल—धा	धि	५	धा	धा	ति	५	ता	ति	५	धा	धा	धि	५
ताल—x			२				०			३			

कुछ लोग सरलता के लिये इस के बोल इस प्रकार मालते हैं:—

मात्रा—१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
बोल—धा	गि	न	धा	ग	धि	न	त	गि	न	धा	ग	धि	न
ताल—x			२				०			३			

तीनताल (त्रिताल)

१६ मात्राएँ होती हैं। ४-४ मात्राओं के ४ विभाग होते हैं जिनमें ३ ताली और एक खाली। पहली मात्रा पर सम, नवीं मात्रा पर खाली तथा पाँचवीं और तेरहवीं मात्राओं पर तालियाँ पड़ती हैं।

मात्रा—१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
बोल—धा	धि	धि	धा	धा	धि	धि	धा	धा	ति	ति	ता				
ताल—x				२				०							

१३ १४ १५ १६
ता धि धि धा
३

कुछ लोग इस ताल के बोल इस प्रकार कहते हैं:—

मात्रा—१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
बोल—ना	धि	धि	ना	ना	धि	धि	ना	ना	ति	ति	ना
ताल—x				२				०			

१३ १४ १५ १६
ना धि धि ना
१.

ताल-तिलवाड़ा

१६ मात्राएँ होती हैं, ४-४ मात्राओं के चार विभाग होते हैं, ३ खाली और १ खाली। पहली मात्रा पर सय, नवीं मात्रा पर खाली तथा पाँचवीं और तेरहवीं मात्राओं पर तालियाँ पड़ती हैं। इस ताल की मात्राएँ तीनताल के समान हैं परन्तु यह ताल बिलंबित लय में बजाया जाता है तथा उसके बोल भी प्रत्यक् हैं:—

मात्रा—१	२	३	४	५	६	७	८
बोल—धा	तिरकिट	धी	धी	धा	धा	ती	ती
ताल—x				२			

९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ता	तिरकिट	धी	धी	धा	धा	धी	धी
०				३			

तालों की दुगुन, तिगुन तथा चौगुन लिखना

किसी भी ताल को विभिन्न लयों में कहा या लिखा जा सकता है। नीचे उदाहरण के लिये छपताल को विभिन्न लयों में लिखा गया प्रस्तुत किया जाता है:—

T

दुगुनः—रूपताल के एक आवर्तन में ही उसके बोल दो बार कहना दुगुन अथवा दून कहलाती है ।

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७
बोल—	धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना	धीना	धीधी
ताल—	X		२			०	

८ ६ १०
 नाती नाधी धीना
 ३

तिगुनः—रूपताल के एक आवर्तन में ही उसके बोल तीन बार कहना तिगुन की लय कहलाती है ।

मात्रा—	१	२	३	४	५
बोल—	धीनाधी	धीनाती	नाधीधी	नाधीना	धाधीना
ताल—	X		२		

६ ७ ८ ६ १०
 तीनाधी धीनाधी नाधीधी नातीना धीधीना
 ० ३

चगुनौः—रूपताल के एक आवर्तन में ही उसके बोल चार बार बोलना चौगुन की लय कहलाती है ।

मात्रा—	१	२	३	४	५
बोल—	धीनाधीधी	नातीनाधी	धीनाधीना	धीधीनाती	नाधीधीना
ताल—	X		२		

६ धीनाधीधी	७ नातीनाधी	८ धीनाधीना	९ धीधीनाती	१० नाधीधीना
०		३		

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि ताल के केवल एक आवर्तन की दून, तिगुन और चौगुन पूँछी जाती है। इसमें ताल की दून, तिगुन और चौगुन प्रारम्भ करने के स्थान को मालूम कर के ही उसे ठीक से लिखा या कहा जा सकता है। नीचे ऋपताल के एक आवर्तन की दून, तिगुन और चौगुन प्रारम्भ करने के स्थानों का गणित द्वारा समझाया जाता है:—

दून:—ऋपताल में १० मात्राएँ होती हैं। और दून की लय में एक मात्रा में २ अंक बोले या लिखे जाते हैं। इसलिये ऋपताल के एक आवर्तन की दून $1^{\circ} = 2$ मात्राओं में आयेगी। यह इस प्रकार लिखी जायगी।

१ २ धी ना	३ ४ ५ धी धी ना	६ ७ धीना धीधी	८ ९ १० नाती नाधी धीना
×	२	८	३

तिगुन:—ऋपताल में कुल १० मात्राएँ होती हैं और तिगुन में एक मात्रा में ३ अंक बोले या लिखे जाते हैं। इसलिये ऋपताल के एक आवर्तन की तिगुन $1^{\circ} = 3$ मात्राओं में आयेगी। यह इस प्रकार लिखी जायगी।

१ २ धी ना	३ ४ ५ धी धी ना	६ ७ ती-धी	८ ९ १० नाधीधी नातीना धीधीना
×	२	०	३

T

चौगुनः—रूपताल में कुल १० मात्राएँ होती हैं और चौगुन की लय में एक मात्रा में ४ अंक बोले या लिखे जाते हैं। इसलिये रूपताल के एक आवर्तन की चौगुन $4^{\circ} = 2\frac{1}{2}$ मात्राओं में आयेगी। यह इस प्रकार लिखी जायेगी:—

१ २	३ ४ ५	६ ७	८	९	१०
धी ना	धी धी ना	ली ना	०	धीना धीधीनाती	नाधीधीना
×	२	०	३		

सप्तम अध्याय

तबला

तबले के दो रूप होते हैं:—(१) दाहिना तबला जो लकड़ी का खोखला बना होता है तथा जिस पर खाल मदी रहती है। (२) बाँया तबला या जुगी जो मिट्टी अथवा किसी धातु की बनी होती है। इस पर भी खाल मदी रहती है। नीचे दाहिने तबले के विभिन्न अंगों को दिया जाता है:—

तबला—यह सीसम, नीम, चंदन, साग आदि लकड़ियों में से किसी का बना खोखला होता है। इस पर खाल मदी रहती है।

पूड़ी—जिस खाल से तबले को मदा जाता है उसे पूड़ी कहते हैं। पूड़ी अधिकतर बकरी की खाल की बनती है। इसे बद्धी अथवा रस्सी से तबले पर कसते हैं।

स्याही—पूड़ी के बीचो बीच जो काला मसाला जमा रहता है उसे स्याही कहते हैं। यह मसाला गोलाकार रक्खा जाता है।

चाँदी—पूड़ी के चारों ओर किनारे पर एक दोहरी पट्टी होती है जिसे चाँदी कहते हैं। चाँदी पर अँगुली के प्रहार से बने निशान होते हैं।

मैदान—स्याही और चाँटी के बीच में जो स्थान होता है वह मैदान कहलाता है ।

गजरा—पूड़ी के चारों तरफ चमड़े का गजरा होता है जिसमें छिद्र होते हैं । इन्हीं छिद्रों में होकर बद्धी को बाँधा जाता है तथा गजरे पर प्रहार करके तबले को कसते या उतारते हैं ।

गट्टे—तबले को चढ़ाने या उतारने के लिये लकड़ी के आठ गट्टे होते हैं । ये गट्टे बद्धी के बीच में लगे रहते हैं ।

बद्धी—पूड़ी को तबले पर कसने के लिये जो चमड़े की डोरी काम में लाई जाती है उसे बद्धी कहती हैं ।

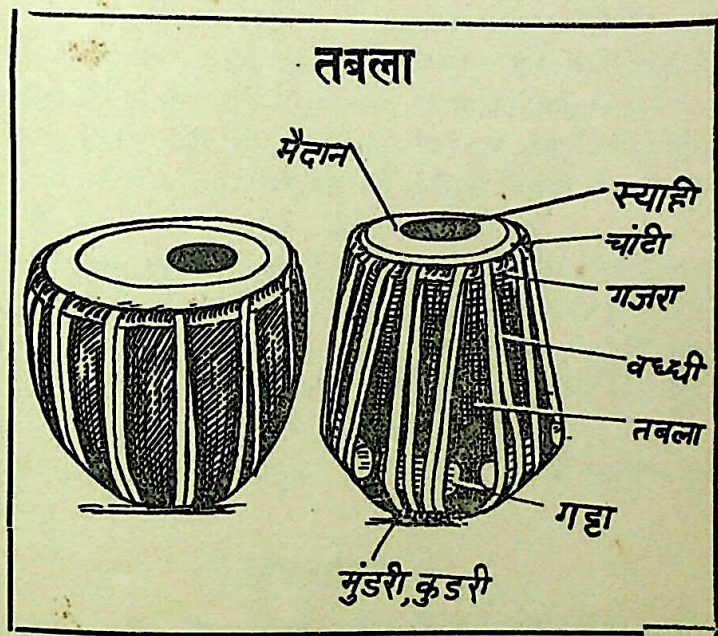
मुँडरी—तबले के नीचे चमड़े या पतली रस्सी की एक कुँडरी बनाते हैं जिसे मुँडरी या कुँडरी कहते हैं मुँडरी से ही होकर बद्धी को कसते हैं ।

बायें अथवा डुग्गी के भी यही सब अंग होते हैं । डुग्गी मिट्टी या किसी धातु की बनी होती है तथा उसका घेरा दाहिने तबले के घेरे से बड़ा होता है । डुग्गी में दाहिने तबले की तरह लकड़ी के गट्टे नहीं होते हैं ।

तबले का मिलाना

दाहिने तबले को अधिकतर षड्ज या पंचम स्वर से मिलाया जाता है । जिस राग में पंचम स्वर नहीं लगता उसमें दाहिना तबला मध्यम स्वर में मिलाते हैं । बायें तबले को अधिकतर ठोँक कर चढ़ा लिया जाता है । कभी कभी षड्ज स्वर से इसे मिलाते हैं ।

तबले को चढ़ाने या उतारने के लिये हथौड़ी काम में लाई जाती सबसे प्रथम तबले के स्वर को बजा कर देख लिया जाता है । फिर देखा जाता है कि जिस स्वर से उसे मिलाना है वह तबले के



स्वर से ऊँचा है अथवा नीचा यदि ऊँचा हुआ तो तबले के गट्टे को नीचे की ओर ठोकते हैं जिससे तबले का स्वर ऊँचा होता है। तबले के गट्टों को ठोकने के दो तरीके हैं:—पहला यह कि सब गट्टों को तरतीब से एक के बाद एक करके ठोकते जाते हैं तथा दूसरा यह कि एक गट्टे को ठोक कर उसके समाने वाले गट्टे को ठोकते हैं और इस प्रकार आमने-सामने के सब गट्टों को ठोक देते हैं। गट्टों को ठोकने के साथ दाहिने हाथ से तबले पर प्रहार करते रहते हैं जिससे तबले का स्वर मालूम पड़ता है। जब तबला निश्चित स्वर पर आ जाता है तब गट्टों को ठोक कर गजरे पर प्रहार करते हैं। गजरे पर प्रहार करने से तबले को सही स्वर से मिलाने में सहायता होती है।

यदि तबले का स्वर ऊँचा हो और उसे नीचा करना हो तो प्रथम गट्टों को नीचे से ऊपर की ओर ठोकते हैं जिससे तबले का स्वर नीचा होता है। दाहिने हाथ से बराबर तबले के स्वर को बजाकर देखते हैं। कुछकमी रहने पर गजरे के ऊपर से अथवा नीचे से प्रहार करके तबले को निश्चित स्वर से मिला लेते हैं।

बाँये तबले को कसने के लिये उसके गजरे पर प्रहार किया जाता है।

तबले की उत्पत्ति

संगीत में ताल शब्द बहुत प्राचीन है कुछ लोग इस शब्द की उत्पत्ति पार्वती जी तथा शंकर जी से मानते हैं। ताल को बजाने के लिये प्राचीन काल में तबले का आविष्कार नहीं हुआ था। कहते हैं कि जिस समय वृत्रासुर राक्षस को शंकर भगवान ने मारा था उस समय आनन्दोत्सव में श्री गणेश जी ने पृथ्वी पर गड्ढा खोदकर, उस पर वृत्रासुर की खाल मढ़कर बजाया था। इससे ताल वाद्य की उत्पत्ति के बारे में कुछ भास होता है।

प्राचीन काल में ताल को बजाने के लिये जो वाद्य प्रयोग में लाए जाते थे वे इस प्रकार हैं: -घट, दुन्दुभी आदम्बर, वानस्पति, मृदंग, भैरो छिमडिम इत्यादि। कुछ लोगों का विचार है कि प्राचीन-काल का दुर्दुर नामक वाद्य बहुत कुछ आधुनिक तबले से मिलता है। बाद में चलकर मृदंग और पखावज का प्रचार अधिक हो गया। १३वीं शताब्दी के बाद ध्रुपद आदि गायनों की संगत मृदंग अथवा पखावज से ही की जाती थी। आज कल भी कुछ गायक ध्रुपद के साथ पखावज की संगत अधिक पसन्द करते हैं। परन्तु आधुनिक समय में मृदंग और पखावज की अपेक्षा तबले का प्रचार दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है।

संगीत के क्षेत्र में अमीर खुसरू (१३ वीं शताब्दि) का स्थान महत्त्वपूर्ण है। बहुत से विद्वानों का मत है कि खुसरू साहब ने ही आधुनिक तबले का आविष्कार किया। इन्होंने पखावज के दो हिस्से कर दिये और इस प्रकार तबले के दो रूपों (वाँया और दाँया) का आविष्कार हो सका। तबले के क्षेत्र में दूसरा स्थान दिल्ली के उस्ताद सुधार खाँ का आता है। ये तबले के सर्वप्रिय उस्ताद माने जाते हैं तथा इन्होंने तबला-वादन में अनेक सुधार किये जो महत्त्व पूर्ण हैं।

तबले के घराने

आधुनिक समय में तबले का खूब प्रचार हो रहा है। इस वाद्य को बजाने के विभिन्न घराने सुनने में आते हैं। ये घराने तबला बजाने की विभिन्न शैलियों तथा शिष्य परम्पराओं पर आधारित हैं। इन घरानों की तबला बजाने की शैली को बाज अथवा बजौरी कहते हैं। आजकल मुख्य तीन घराने प्रचलित हैं:—

(१) दिल्ली का घराना ।

(२) परब का घराना ।

(३) पंजाब का घराना ।

इन तीन घरानों के अतिरिक्त कुछ अन्य घराने भी आज कल प्रचलित हैं जैसे दिल्ली घराने की एक शाखा अजड़ाना घराने के नाम से प्रसिद्ध है तथा पूरब के घराने में तीन घराने अलग-अलग स्थापित हो गये हैं जो (अ) लखनऊ का घराना (ब) बनारस का घराना तथा (स) फरुखाबाद का घराना दलहलाते हैं। इस प्रकार कुल ६ घराने हुये जो इस प्रकार के हैं :—(१) दिल्ली घराना (२) अजड़ाना घराना (३) लखनऊ घराना (४) बनारस घराना (५) फरुखाबाद घराना (६) पंजाब घराना ।

दिल्ली घराना तथा उसकी वादन-शैली (बाज)

इस घराने की उत्पत्ति उस्ताद सुधार खाँ से होती है। इनके घराने के ऋल्लू खाँ, रोशन खाँ तथा तुल्लन खाँ प्रसिद्ध तबलिये हुये हैं। सुधार खाँ के लड़कों में घनीट खाँ और बुगरा खाँ प्रसिद्ध हुए। आधुनिक समय में दिल्ली घराने के प्रसिद्ध तबलिये इस प्रकार हैं :—अमीर हुसैन, शमसुद्दीन खाँ, गुलाम हुसैन इत्यादि।

दिल्ली बाज के घराने के लिये अधिकतर दो अंगुलियों का प्रयोग किया जाता है, तर्जनी और मध्यम। इस बाज में चाँदा और स्याही का काम अधिक होता है। तथा पेशकर, कायदे रेते, तें आदि इस बाज में अधिक बजाये जाते हैं। तबल पर तिर' तिरकिट, धिन, गिन, दींग, ब्रक आदि धोलों का प्रयोग अधिक होता है।

अजड़ाना घराना तथा उसकी वादन शैली (बाज)

इस घराने का सम्बन्ध दिल्ली घराने से है, क्योंकि इसे दिल्ली

के उस्ताद सिताब खाँ के शिष्यों ने चलाया। अजराड़ा मेरठ जिले का एक गाँव है। सिताब खाँ के शिष्य कल्लू खाँ और मोरू खाँ इसी गाँव के निवास थे। बाद में चलकर इस घराने के मुहम्मदी बख्श, काले खाँ, हम्सू खाँ तथा शम्सू खाँ प्रसिद्ध हुए। उस्ताद शम्सू खाँ के ही पुत्र प्रो० हबीबुद्दीन हैं, जो आजकल हिन्दुस्तान के चुने हुए तबलियों में से हैं।

दिल्ली बाज की तरह यह बाज भी बहुत मीठा है। इसमें चाँटी का काम अधिक होता है तथा छोटे छोटे टुकड़े, गतें कायदे, रेलें, पेश नार आदि होते हैं। इस बाज में बाँये और दाँये दोनों हाथों के सुन्दर बोल बजाये जाते हैं जैसे—धिन, घेतक, घेघेनक धारागिन, दिग दिना गिन आदि। इस बाज में आड़लय का काम सुन्दर होता है।

लखनऊ घराना तथा उसकी वादन-शैली (बाज)

पूरब के घरानों में से सबसे प्रमुख घराना लखनऊ का है। इसकी स्थापना उस्ताद बख्शू खाँ और मोदू खाँ ने की। इनके वंश में शम्सू खाँ, मुहम्मद खाँ, मुन्ने खाँ, आबद हुसैन खाँ आदि तबले के खलफा माने जाते थे।

इस बाज में खुले बोलों और जोरदार बोलों का अधिक प्रयोग होता है। कायदे, रेलें, टुकड़े गतें, परन, चक्करदार गत आदि बजाये जाते हैं। जोरदार बोल जैसे—धिट, तिर, धागे तिट, गद्गिन, कड़ाँ, धा, धिर, धिर आदि का प्रयोग होता है।

बनारस घराना तथा उसकी वादन-शैली (बाज)

बनारस का घराना लखनऊ घराने से सम्बन्धित है। यहाँ के प्रसिद्ध तबलिये राम सहाय थे। जो उस्ताद मोदू खाँ के शिष्य थे।

इस घराने के प्रसिद्ध तबलियों में भैरों सहाय, बलदेव सहाय, दुर्गा सहाय आदि अधिक प्रसिद्ध हुए। आजकल श्री कंठे महाराज, अनोखे लाल, शान्ता प्रसाद (गुदई महाराज) प्रो० श्यामलालजी, कंठे महाराज के भतीजे क्रिसन महाराज आदि प्रसिद्ध हैं।

लखनऊ बाज की तरह इस बाज के बोल भी खुले और जोरदार होते हैं कायदे, परन, गत, रेला आदि लखनऊ बाज की तरह होते हैं।

फरुखाबाद घराना तथा उसकी वादन शैली (बाज)

यह घराना उस्ताद हाजी खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हाजी खाँ लखनऊ घराने के थे। आगे चलकर इमाम बख्श, धुन्नू खाँ, मुबारक अली, अमीर हुसैन, गुलाम हुसैन, उस्ताद थिरकवा आदि प्रसिद्ध हुए। इसी वंश के उस्ताद नन्हे खाँ थे जो लखनऊ के दरबार में थे। नन्हे खाँ के लड़के उस्ताद मसीत खाँ थे जो रामपुर के दरबार में थे तथा मसीत खाँ के पुत्र कलकत्ते के उस्ताद करामत हुसैन खाँ हैं जो आजकल प्रसिद्ध तबलिये हैं।

फरुखाबाद के बाज में भी लखनऊ के बाज की तरह खुले तथा जोरदार बोल बजाये जाते हैं।

पंजाब घराना तथा उसकी वादन शैली (बाज)

पंजाब का घराना एक स्तवन्त्र घराना है। इस घराने के हुसैन बख्श तथा फकीर बख्श प्रसिद्ध पखावजी थे। फकीर बख्श ने पखावज के बोलों को बंद करके तबले के बोलों का आविष्कार किया। बाद में इस घराने के—उस्ताद कादिर बख्श, करमइलाही खाँ, मलन खाँ तथा बम्बई के अल्ला रक्खा खाँ अधिक प्रसिद्ध हुए।

इस बाज में पखावज के जोरदार और खुले बोलों की प्रधानता है। बड़ी-बड़ी परनें, गतें, लयकारियों का आनन्द इस बाज में

(८४)

अधिक है। इस बाज के विशेष बोल जो अन्य बाजों के बोलों से अलग हैं इस प्रकार हैं:—‘दुंग, दुंग, नग, घटेत इत्यादि।

तबले के दस वर्ण

धा धिन तेरे तिन ना क धो, ता किन कत्त विचारि।

तबला के दस बोल ये, इनको लेउ सुधारि॥

अर्थात्—तबले के दस वर्ण अथवा बोन होते हैं जो धा, धिन, तेरे, तिन, ना, क, धो, ता, किन, कत्त कहलाते हैं। इनको भली प्रकार तबले पर हाथ से निकाल लेना चाहिए।

नीचे दाहिने तथा बाँये हाथ के बोलों को अलग-अलग दिया जाता है:—

(१) दाहिने तबले पर निकलने वाले दाहिने हाथ के बोल:—
ता, ते, टे, तेरे, ना, किट, ति, दिं, तुन।

(२) बाँये (डिग्गा) पर निकलने वाले बायें हाथ के बोल:—
घे, धिन, क, कत्त, किन्।

(३) दोनों तबलों पर एक साथ निकलने वाले दोनों हाथों के मिले हुए बोल:—धा धिन्ना, कधान, गिन, त्रिक, किटतक, किङ्गना, गिद, किङ्गान, इत्यादि।

विद्यार्थी को चाहिये कि वह इन बोलों को किसी अच्छे उस्ता से सीख कर तबले पर अभ्यास करे।

तबले का अभ्यास

तबले का अभ्यास करते समय हमें उस आसन से बैठना चाहिए जिससे तबले पर हमारा पूर्ण अधिकार रहे। विद्वानों ने इसके लिए वीरासन को उचित माना है। दाहिना पैर पीछे की ओर मोड़

तथा बायें पैर के बाईं ओर बाँया (डिगा) और दाईं ओर दाहिना (तबला) रहना चाहिए।

आसन के साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि तबला कैसे और कहाँ रख कर बजाया जाय। अधिकतर तबले को रखने के लिये कपड़े की गड्डरियाँ बनाते हैं जिससे तबले हिल नहीं पाते। बायें के लिये गेंडुरी की बहुत आवश्यकता है क्योंकि इसके बिना उसमें आस नहीं निकल पाती तथा इधर-उधर हिलने से उस पर हाथ भी ठीक से नहीं बैठता। तबला तथा बाँया को कुछ आगे की ओर झुका हुआ रखते हैं।

तबले पर हाथ रखने की भी विशेषता होती है। अधिकतर ऐसा देखा जाता है कि तबले पर हाथ रखते ही सुनने वाले समझ जाते हैं कि बजाने वाला तबला कैसा बजायेगा। इसलिये यह आवश्यक है कि प्रारम्भ में किसी योग्य गुरु से तबले पर हाथ रखना सीख लिया जाय नहीं तो बाद में हाथ बिगड़ जाने पर बड़ी धिक्कत का सामना करना पड़ता है।

तबला-शास्त्र

ठेके की किस्में:—ताल के विभागों पर कुछ असर न डालते हुए ताल के ठेके को विभिन्न रूपों के बोलों से सजाते हुए बजाना ठेके की किस्में बदलना कहलाता है। उदाहरण के लिये ताल कहरवा की किस्में इस प्रकार बदली जायेंगी—

धातू नातू नाता धिन अथवा धा धिन धागे तिन अथवा

धागे तिट नागे तिट इत्यादि

तीहा:—किसी टुकड़े के बोलों को एक ही प्रकार से तीन बार बना कर सम पर आना तीहा अथवा तिहाई कहलाता है। तीहा दो

प्रकार के होते हैं एक तो वह जिसमें तीनों टुकड़े बिना किसी रुकावट के एक के बाद एक करके लगा दिये जाते हैं तथा आखिरी टुकड़े के बाद सम आता है। इसको 'वेदमदार तीहा' कहते हैं। दूसरा तीहा वह होता है जिसमें प्रत्येक टुकड़े के बाद थोड़ा सा रुकते हैं और आखिरी टुकड़े के अन्त में सम आता है, अर्थात् पहले दो टुकड़ों पर दम देते हैं तथा आखिरी टुकड़े के 'धा' पर सम आ जाता है। दोनों के उदाहरण ताल तीन ताल में नीचे दिये जाते हैं :—

(१) वेदमदार—

घेतिरकिटतक	तातिरकिटतक	धाऽतिट	घेतिरकिटतक	
<u> </u> <u> </u> <u> </u> <u> </u>				
तातिरकिटतक	धाऽतिट	घेतिरकिटतक	तातिरकिटतक	धा
<u> </u> <u> </u> <u> </u> <u> </u>				
३				X

(२) दमदार—धा, तिर किट तक धाऽ धा, तिर

<u> </u> <u> </u> <u> </u> <u> </u>				
०				
किट तक	धाऽ धा,	तिर किट तक	धा	
<u> </u> <u> </u> <u> </u> <u> </u>				
३				X.

मुखड़ा या मोहरा :—मुखड़ा अथवा मोहरा बोलों का वह समूह है जिसको संगत करते समय बजा कर सम पर आया जाता है। जिस प्रकार ख्याल में मुखड़ा बना कर सम दिखाया जाता है उसी प्रकार तबले पर भी सम दिखलाने के पहले मुखड़ा या मोहरा लगाते हैं। कभी-कभी मुखड़े के अन्त में तिया लगा कर भी सम दिखलाते हैं। कुछ लोग मुखड़ा और मोहरा इन दोनों में अन्तर बतलाते हैं। उनका कहना है कि मुखड़ा संगत करने के पहले बजाया जाता है तथा मोहरा बार-बार गायन के साथ बजाते हैं।

परन्तु यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि मुखड़ा और मोहरा अलग-अलग नहीं होते। 'मुख' शब्द से मुखड़ा बना है तथा 'मुह' शब्द से मुहरा पर अर्थ दोनों का एक ही है। नीचे सीधा तथा तिहाईदार मुखड़ा अथवा मोहरा के उदाहरण ताल तीन ताल में दिये जाते हैं:—

(१) धिर किट धिन ना । किड़ा ऽन नागे तिट । धा
 ० ३ X

(२) धित्ता धेधेतिट तिट, तिरकिट तकताऽतिरकिट ।

धाऽ, तिरकिट तकताऽ तिरकिट धाऽ, तिरकिट तकताऽतिरकिट । धा
 ३ X

कायदा :—कायदा बोलों का वह समूह है जो एक या एक से अधिक आवर्तनों का होता है। इसमें यह विशेषता होती है कि इसके बोल ताल के विभागों के अनुसार ही विभाजित होते हैं और इस प्रकार ताल पर ताली तथा खाली पर खाली पड़ती है। हर बाज के कायदे अलग-अलग हैं। इनको तबला-सोलो के आरम्भ में बजाया जाता है और इनका विस्तार किया जाता है। प्रारम्भ में तबला सीखने वाले नये विद्यार्थियों का हाथ साफ करने के लिये कायदों पर अभ्यास कराया जाता है उदाहरण के लिये तीनताल का एक कायदा दिया जाता है :—

धा धा तिर किट	धा धा तु ना	ता ता तिर किट	धा धा तु ना
X	२	०	३

पल्टा :—कायदे के बोलों को उलटने अथवा पलटने से पल्टे बनते हैं। पल्टों में भी ताल के विभागों का ध्यान रक्खा जाता है।

<u>दिंता धा तित्</u> ३	<u>धाऽक्रधा तित्</u>	<u>धाधा दिंता</u>	<u>ती कृतिता</u> <u>ऽता तिता</u> ०
<u>धाति धाति</u>	<u>धाधा दिंता</u>	<u>तित् धागधा</u>	<u>दिंता धातित्</u> ३
<u>धा ऽक्र धातित्</u> <u>धाधा दिंता</u>			

परन :—सुन्दर तथा जोरदार बोलों का वह समूह जो कम से कम दो आवर्तनों या अधिक आवर्तनों का हो, परन कहलाता है। वास्तव में परन पखावज पर बजाई जाती है परन्तु आधुनिक समय में पखावज के ही बोलों को तबले पर भी बजाया जाता है। इस कारण परन के बोल जोरदार और खुले होते हैं। एक ही परन विभिन्न लयों में बजाई जाती है तथा परन का अन्त तीहे से करने का प्रचार है। दिल्ली बाज में परन बहुत कम खुलने को मिलती है परन्तु पूरब तथा पंजाब के बाजों में प्रचार है। तीन ताल में परन इस प्रकार होगी :—

<u>धिदधिद</u> ×	<u>धागेतिद</u>	<u>क्रधातिद</u> <u>धागेतिद</u>	<u>क्रधातिद</u> <u>क्रधातिद</u> २
<u>क्रधातिद</u> <u>धागेतिद</u>	<u>धेत् धेत्</u>	<u>तिरकिद</u>	<u>धेत् धिदतिद</u> <u>धागेतिद</u> ०
<u>धित् तगि</u> <u>ऽन्नधित्</u> <u>तगिऽन्न</u> <u>धेत् धेत्</u> ३			

गतः—गत, बोलों का वह संग्रह है जिसके बोल कुछ हल्के होते हैं तथा जिसे दून, चौगुन आदि लयों में बजाया जाता है। परन

और गत में यही अन्तर है कि परन के बोल जोरदार तथा खुले होते हैं और गत के बोल हल्के होते हैं जैसे :—

धा-ग धिनक तकिट धिनक	धात्रक धिकिट धिनक गदिगन
X	२
नगिन नगिन तकिट धिनक	धात्रक धिकिट धिनग दिगन
०	३

रेला:—पल्लों को सुन्दर ढंग से बार-बार दुहराते हुए चौगुन अथवा अठगुन की लय में बजाने को रेला कहते हैं। रेले में अभ्यास तथा हाथ की तैयारी की बहुत आवश्यकता होती है। तीनताल का रेला इस प्रकार है :—

धाऽतिर किटतक धाऽतिर किटतक	धाऽतिर किटतक तुना किटतक
X	२
ताऽतिर किटतक ताऽतिर किटतक	धाऽतिर किटतक तुना किटतक
०	३

लगगी :—लगगी उन बोलों के समूह को कहते हैं जिनको छोटे ताल जैसे कहरवा, दादरा आदि में सुन्दरता के लिये बजाया जाता है। छोटे तालों में कायदा, पेशकार, परन, आदि नहीं बजाये जाते। ताल दादरा में लगगी का एक उदाहरण इस प्रकार है :—

धाति धाधा तीना | ताति धाधा धीना

संगत

गायन, वादन अथवा नृत्य के साथ तबला बजाने को 'साथ' या 'संगत' करना कहते हैं। संगत करने की विशेषता यह होती है कि

गायक अथवा वादक जिस लयकारी में गाता अथवा बजाता है, तबले वाला भी तबले के बोल उसी लयकारी में बजाता हुआ ताल का ध्यान रखता है। संगत के साथ गायन, वादन तथा नृत्य का आनन्द दुगुना बढ़ जाता है क्योंकि श्रोताओं को लय का आनन्द तबले पर भी मालूम पड़ता रहता है। गायक या वादक किसी स्वर समूह को किसी निश्चित लय में दिखलाता है तबला वादक उसे सुन कर तबले के बोलों से उसी लय में उस ठुकड़े को निकालता है जिसे सुन कर श्रोता लोग 'वाह' 'वाह' करते हैं।

‘तबला सोलो’

जब तबला वादक केवल तबले पर ही किसी ताल को परन, कायदे, मुखड़े, पेशकार, ठुकड़े आदि से सजा कर बजाता है तब उसे 'सोलो' प्रस्तुत करना कहते हैं। अधिकतर ऐसा होता है कि सारंगी या किसी अन्य वाद्य पर ताल की कोई गत छेड़ी जाती है तथा तबला वादन ही मुख्य ध्येय होता है। आजकल संगीत सम्मेलनों तथा रेडियो पर बहुधा तबला सोलो सुनने का मिलता है।

संगीत में ताल का महत्व

गायन, वादक तथा नृत्य इन तीनों कलाओं में ताल का मुख्य स्थान है। बिना ताल के संगीत पूर्ण नहीं कहा जा सकता। संगीत रूपी भवन की ताल नींव है इस लिए यदि नींव ही कमजोर होगी तो सारा भवन भी स्थायी नहीं रह सकता। यदि हमको इस भवन को सुन्दर तथा स्थायी बनाना है तो अवश्य ही हमें इसकी नींव अर्थात् ताल की महत्वता समझना चाहिये। ताल का ज्ञान प्रत्येक संगीतज्ञ के लिये चाहे वह गायक हो, चाहे वादक अथवा चाहे नर्तक, अनिवार्य है। बिना ताल ज्ञान के उसे संगीतज्ञ नहीं कहा जा सकता।

ताल का सम्बन्ध लय से है और लय संगीत का आधार है। संगीत में लय का महत्व बतझाते हुये कहा है कि “श्रुतिर्माता लयः पिता” अर्थात् सङ्गीत की यदि श्रुति माना है तो लय पिता है। लय सङ्गीत का वह माध्यम है जिससे आनन्द तथा रस का स्रोत दूसरों तक पहुँचता है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में एक लय होती है और उसी लय के कारण उसमें सजीवता रहती है। जब किसी वस्तु की लय समाप्त हो जाती है तो वह वस्तु जड़ हो जाती है। दूसरे शब्दों में लय के साथ साथ वस्तु भी समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार लय का सम्बन्ध संगीत के साथ है। यदि लय को माध्यम मान कर हम संगीत का विभाजन करें तो तीन विभाग किये जा सकते हैं।

(१) वह संगीत जो केवल लय पर आधारित है। इस संगीत में केवल लय की विशेषता होती है। अधिकतर कुछ विशेष स्वरों पर अथवा धुन पर सागा गीत गाया या बजाया जाता है परन्तु आनन्द की प्राप्ति लय के कारण मिलती है। इस संगीत के अन्तर्गत ग्रामीण गीत, ढोलक पर गाये जाने वाले गीत, किसी विशेष उत्सव पर गाये जाने वाले गीत आदि आते हैं। अधिकतर देखा जाता है कि कुछ लोग मिल कर कोई विशेष धुन पर गीत गाते हैं जिसमें लय की प्रधानता होती है। इस लय के कारण सुनने वाले उसी लय में डूब जाते हैं।

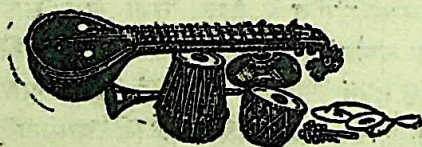
(२) दूसरे प्रकार का संगीत वह है जिसमें लय तथा स्वर दोनों का बराबर महत्व है। इन गीतों में एक विशेष लय के साथ-साथ विभिन्न स्वरों का चमत्कार भी होता है। स्वर के साथ ही लय का आनन्द भी सुनने वालों को मिलता है। इस संगीत के अन्तर्गत फिल्मी संगीत, भजन, गीत, पद, दादरा, कव्वाली आदि को रखते हैं। इन गीतों में स्वर तथा लय दोनों का महत्व होता है इसलिए नई-नई स्वर रचनाओं के साथ ही लय-प्रधान ताल जैसे कहरवा, दादरा, त्रिताल आदि का अधिक प्रयोग होता है।

(३) तीसरे प्रकार का संगीत वह है जिसमें लय की अपेक्षा स्वर का अधिक महत्व होता है। इस संगीत में लय का आनन्द कम आता है तथा स्वरों का अधिक। शास्त्रीय संगीत के बड़े खयाल, ध्रुपद, धमार, टप्पा आदि इसी के अन्तर्गत आ सकते हैं। इन गीतों में लय प्रधान ताल न बज कर धीमी लय के ताल जैसे मूपरा, आड़ाचौताल, तिलवाड़ा आदि बजते हैं, जिसमें साधारण श्रोता को आनन्द नहीं मिलता। इस संगीत का आनन्द लेने के लिये श्रोताओं को संगीत के कुछ ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है।

इस विभाजन से संगीत में ताल तथा लय का महत्व भली प्रकार समझा जा सकता है। जिस सङ्गीत में स्वर की अपेक्षा लय का महत्व अधिक होता है उससे प्रत्येक मनुष्य आनन्द की प्राप्ति करता है। इसीलिये यह देखा जाता है कि ग्रामीण गीत, ढोलक के गीत अर्थात् लय प्रधान गीत अधिक जन-मन-मोहक होते हैं। कारण यह है कि साधारण मनुष्य को इनको समझने में कोई विशेष ध्यान नहीं लगाना पड़ता तथा लय की प्रधानता होने के कारण उसी लय में मनुष्य मग्न हो जाता है। कभी कभी तो मनुष्य उस लय में इतना डूब जाता है कि वह रुक कर उस लय में नाचने लगता है। शास्त्रीय सङ्गीत में ही यदि हम देखें तो विलम्बित लय की अपेक्षा मध्य अथवा द्रुत लय के गीतों से जन साधारण को आनन्द मिलता है। जैसे बड़े खयाल ध्रुपद, धमार आदि की अपेक्षा तीनताल, झपताल आदि में गाये जाने वाले छोटे खयाल अधिक मन-मोहक लगते हैं। 'तराना' जो कि शब्द हीन होता है अधिक आनन्द देता है, क्योंकि वह लय प्रधान है। इस प्रकार हमने देखा कि लय अथवा ताल के महत्व के साथ ही सङ्गीत का आनन्द भी अधिक होता जाता है।

सङ्गीत में ताल एक निश्चित क्रम उत्पन्न करता है और उसी

क्रम से रसानुभूति तथा आनन्दोचित्त में सहायता मिलती है। संपूर्ण ब्रह्माण्ड का एक-एक कण अपने निश्चित क्रम से हिलाता है। वस्तु में गति समाप्त होने पर उसे जड़ अथवा प्राण रहित कहा जाता है। इसी प्रकार जब सङ्गीत में क्रम होता है तब उसका आनन्द भी कई गुना हो जाता है और यह क्रम सङ्गीत में ताल द्वारा ही उत्पन्न होता है।



अष्टम अध्याय

भारतीय वाद्य

भारतीय संगीत में अनेक प्रकार के वाद्य प्रचलित हैं जैसे सितार, तानपूरा, हारमोनियम, बेला, वीणा, सारंगी, इसराज, सरोद, तबला, पखावज, बाँसुरी, ढोलक इत्यादि। आधुनिक प्रचलित वाद्यों में से कुछ तो ऐसे वाद्य हैं जो दूसरे देशों के हैं लेकिन उन्हें हम लोगों ने अपना लिया है जैसे हारमोनियम, बेला, क्लारेनेट इत्यादि तथा अन्य वाद्य भारतीय हैं। मुख्य रूप में हम इन वाद्यों को दो विभागों में बाँट सकते हैं (१) स्वर वाद्य (२) ताल वाद्य। स्वर-वाद्य वे हैं जिनसे स्वरों की उत्पत्ति होती है जैसे सितार, बेला, वीणा, हारमोनियम, सारंगी, बाँसुरी इत्यादि। ताल-वाद्य वे हैं जिनसे ताल की उत्पत्ति होती है जैसे तबला, मृदंग, पखावज, मंजीरा, ढोलक इत्यादि।

भारतीय वाद्यों का विभाजन पुस्तक के अगले भाग में विस्तार पूर्वक दिया जायेगा। यहाँ पर केवल तानपूरा और सितार का वर्णन दिया जाता है। तबले का वर्णन पहले किया जा चुका है।

तानपूरा

भारतीय संगीत के स्वर देने के लिये प्रमुख वाद्य का नाम तानपूरा है। तानपूरे को तम्बूरा, तानपूरा, तानपुरा आदि नामों से पुकारा जाता है। तम्बूरे का नाम उसके आविष्कार करने वाले तुम्बरू

नामक गन्धर्व पर ही पड़ा। तार वाद्य होने के कारण गायन अथवा वादन में स्वर देने के लिये इसको सर्वोत्तम मानते हैं। नीचे इस वाद्य के विभिन्न अंगों को दिया जाता है—

तूम्बा :— जौकी अथवा कद्दू का बना गोलाकार बड़ा भाग तूम्बा कहलाता है।

तबली :— तूँवे को ढकने के लिये पतली लकड़ी का जो ढक्कन होता है, जिस पर धुरच आदि रक्खे जाते हैं, तबली कहलाता है।

धुरच :— तबली के ऊपर लकड़ी अथवा हड्डी की एक चौकी होती है जिस पर तार रक्खे रहते हैं। वह धुरच (Bridge) कहलाती है।

कील या लँगोट :— तूम्बे के सिर पर तारों को बाँधने का प्रबन्ध होता है। कभी तो लकड़ी की एक कील लगा दी जाती है और कभी लकड़ी में चार छिद्र कर दिये जाते हैं। इस स्थान को कील या लँगोट कहते हैं।

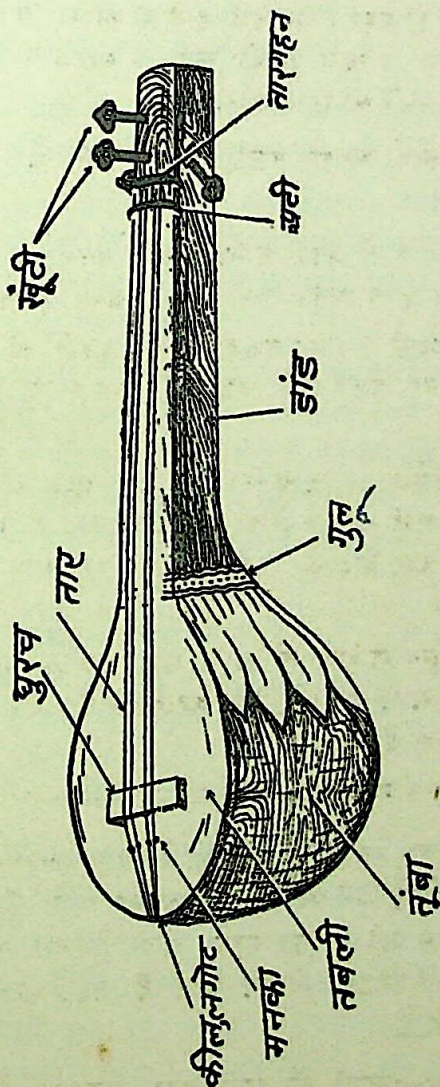
डॉड :— तूम्बे के बाद जो लम्बा भाग तानपूरे का होता है, जिसमें खूंटियाँ आदि होती हैं, डॉड कहलाता है। यह भाग अन्दर से पोला बना होता है।

गुलू :— तूम्बे और डॉड के जोड़ने के स्थान को गुलू कहते हैं।

अटी और तार-गहन :— खूंटियों के पास हड्डी की दो सफेद पट्टियाँ लगी रहती हैं जिन पर तार आधारित होते हैं। इन दोनों पट्टियों में से जिस पट्टी पर तार रक्खे रहते हैं उसे अटी कहते हैं और जिस पट्टी में से तार पिरोये जाते हैं वह तार-गहन अथवा तारदान कहलाती है।

खूंटियाँ :— तानपूरे के अटी और तारगहन के पीछे चार

तानपुरा



[Faint, illegible text, likely bleed-through from the reverse side of the page]

खूंटियाँ होती हैं जिनमें तार कसे रहते हैं। इन खूंटियों द्वारा ही तारों को कसा अथवा ढीला किया जाता है।

सिरा:—अटी और तार गहन के बाद तानपूरे का वह भाग जिसमें चार खूंटियाँ होती हैं, सिरा कहलाता है।

मनका:—धुरच (Bridge) तथा कील के बीच तारों में मोती पड़े रहते हैं जो हाथी के दात, हड्डो अथवा काँच के हाते हैं। इन मोतियों से तार का स्वर मिलाने में सहायता मिलती है। इन्हें मनका अथवा गुरिया कह कर पुकारते हैं।

तार:—तानपूरे में चार तार होते हैं। इनमें से तीन तो फौलादी लोहे के होते हैं। तथा एक पीतल का मोटा तार होता है किसी किसी तानपूरे में पीतल के तार द्वा होते हैं एक मोटा और एक पतला। ये चारों तार कील अथवा लंगोट में बाँधे जाते हैं तथा धुरच के ऊपर से जाकर अटी और तार-गहन में से होकर खूंटियों में लपेटे जाते हैं।

सूत का धागा:—धुरच पर तारों के नीचे सूत लगा रहता है। इस सूत के कारण ही तार में झनकार उत्पन्न होती है। तार में झनकार उत्पन्न करने को जवारी खोलना कहते हैं।

तानपूरे के तारों को मिलाना

तानपूरे में चार तार होते हैं। पहला तार फौलादी लोहे का होता है। कभी कभी मर्दाने तानपूरा का पहला तार पीतल का होता है। इस तार को पंचम का तार कहते हैं तथा इसे मन्द्र सप्तक के पंचम स्वर से मिलाते हैं जिस राग में पंचम स्वर वार्जित होता है, जैसे मालकोश, उसमें इस तार को मन्द्र सप्तक के शुद्ध मध्यम स्वर से मिलाते हैं। तानपूरा मिलाने के लिये सब से प्रथम इन्हीं दो तारों को

गायक अपने गले के स्वर (षड्ज्) से मिलाता है। चौथा तार मोटे पीतल का होता है इसे मन्द्र सप्तक के षड्ज् से मिलाया जाता है। क्योंकि यह मन्द्र के षड्ज् से मिलाया जाता है इसलिये इसे 'खरज का तार' भी कह कर पुकारते हैं।

तानपूरे के पहले अर्थात् 'पंचम के तार' को मध्यमाँगुली से तथा बाकी के तीन तारों को तर्जनी अँगुली से बजाया जाता है।

सितार

सितार के आविष्कार के संबंध में अभी तक कोई निश्चित मत नहीं है। बहुत से लोगों का विचार है कि चौदहवीं शताब्दि में, अमीर खुसरो ने बीणा के आधार पर 'सहतार' नामक वाद्य का आविष्कार किया। 'सहतार' एक फारसी शब्द है जिसका अर्थ होता 'तीन तार का वाद्य'। 'सहतार' ही बिगड़ कर 'सितार' कहलाने लगा। प्रारम्भ में इस वाद्य में कुल तीन तार होते थे परन्तु परिवर्तन के अनुसार तीन के स्थान पर अब इसमें सात तार लगाये जाने लगे।

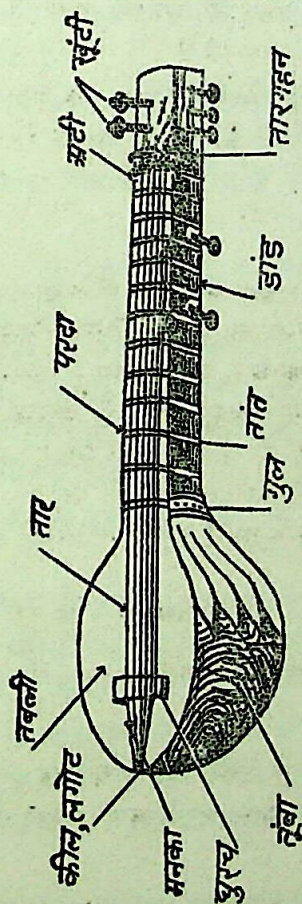
सितार के अंग

तूँबा :—कहू अथवा लौकी का बना गोलाकार भाग तूँबा कहलाता है।

तबली :—तूँबे के ऊपर उसे ढकने के लिये पतली लकड़ी का जो ढक्कन होता है, जिस पर घुरच आदि रखे जाते हैं, तबली कहलाता है।

घुरच :—तबली के ऊपर लकड़ी अथवा हड्डी की एक चौकी होती है जिस पर सितार के तार रखे रहते हैं। वह घुरच (Bridge) कहलाती है।

सितार



कील या लँगोट :—तूँबे के सिर पर सितार के तारों को बाँधने का प्रबन्ध होता है। अधिकतर लकड़ी अथवा हड्डी की कील इस स्थान पर लगाते हैं जिसमें तार बाँधे जाते हैं। इस कील को लँगोट मोगरा अथवा कील कहते हैं।

डॉड :—तूँबे के बाद जो लम्बा भाग सितार का होता है जिसमें खूंटियाँ आदि होती हैं, डॉड कहलाता है। यह लकड़ी का पोला बना होता है। तानपूरे को डॉड सितार की डॉड से अधिक मोटी तथा गोलाकार होता है।

गुलू अथवा गुल :—जिस स्थान पर तूँबा और डॉड जुड़ते हैं उसे गुलू अथवा गुल कहते हैं।

तार गहन :—खूंटियों के पास हड्डी या हाथो दाँत की दो पट्टियाँ होती हैं। इनमें से जिसमें तार पिरोये जाते हैं तथा जिसमें तारों को पिरोने के लिये छिद्र होते हैं, उसे तारगहन कहते हैं। वह खूंटियों की ओर से पतली पट्टी होती है।

अटी :—तारगहन के बाद दूसरी पट्टी जिस पर तार रक्खे जाते हैं, अटी कहलाती है।

पड़दे :—डॉड के ऊपर पीतल अथवा लोहे के पड़दे ताँत या धागे से बँधे रहते हैं जिन पर अँगुली रखने से विभिन्न स्वर उत्पन्न किये जाते हैं। इनको 'पड़दे,' 'सुन्दरी' अथवा 'कट' आदि नामों से पुकारते हैं।

मनका :—सितार के पहले तार में लँगोट (जहाँ तार बाँधे जाते हैं) और घुरच (Bridge) के बीच जो मोती पड़ा रहता है तथा जिससे तार को स्वर से मिलाने में सहायता मिलती है, उसे मनका या गुरिया कहते हैं।

खूंटियाँ :—सितार में लकड़ी की बनी सात खूंटियाँ होती हैं जिनसे तार कसे अथवा ढीले किये जाते हैं।

सितार में सात तार होते हैं जो इस प्रकार हैं :—

सितार के तार तथा उनका मिलाना

(१) सितार का पहला तार फौलादी लोहे का बना होता है। इसे बाज का तार कहते हैं तथा मन्द्र सप्तक के मध्यम स्वर से इसे मिलाया जाता है। सितार-वादन में सबसे अधिक प्रयोग इसी तार का होता है क्योंकि मन्द्र सप्तक के मध्यम स्वर से तार सप्तक तक के स्वरों को इसी तार द्वारा निकालते हैं।

(२) सितार का दूसरा तार पीतल का बना होता है और जोड़ी का तार कहलाता है। इसे मन्द्र सप्तक के षडज स्वर से मिलाते हैं।

(३) दूसरे तार की तरह सितार का तीसरा तार भी पीतल का बना होता है। इसे भी जोड़ी का तार कहते हैं तथा मन्द्र सप्तक के षडज स्वर से मिलाते हैं।

क्योंकि ये दो तार मन्द्र सप्तक के षडज से मिलाये जाते हैं इसीलिये इन्हें 'जोड़ी के तार' कह कर पुकारते हैं। सितार मिलाने के लिये सबसे पहले इन दो तारों को मिलाया जाता है फिर बाद में अन्य तार मिलाये जाते हैं।

(४) सितार का चौथा तार लोहे का बना होता है और पंचम का तार कहलाता है। इसे मन्द्र सप्तक के पंचम स्वर से मिलाया जाता है।

(५) सितार का पाँचवाँ तार पीतल का बना होता है परन्तु अन्य तारों से यह कुछ मोटा होता है। इसे अति मन्द्र सप्तक के पंचम स्वर से मिलाया जाता है। इसको भी पंचम का तार अथवा 'लर्ज का तार' कहते हैं।

(६) सितार का छठा तार पतले फौलादी लोहे का बना होता है तथा 'चिकारी' अथवा 'पपैया का तार' कहलाता है। इसे मध्य सप्तक के षडज स्वर से मिलाया जाता है।

(७) सितार का सातवाँ तार भी पतले फौलादी लोहे का बना होता है इसको भी 'चिकारी का तार' अथवा 'पपैया का तार' कह कर पुकारते हैं। इस तार को तार सप्तक के षड्ज स्वर से मिलाया जाता है। कुछ लोग इसे मध्य सप्तक के पंचम स्वर से भी मिलाते हैं परन्तु तार सप्तक के षड्ज से मिलाने का अधिक प्रचार है।

सितार के तारों को मिलाते समय सबके पहले जोड़ी के तारों को मिलाना चाहिए। इनके बाद बाज के तार को मिलाना चाहिए। बाज के तार के बाद पंचम के दोनों तारों को एक के बाद एक करके मिलाना चाहिए। इन दोनों तारों को मिलाने में इस बात की सावधानी रखनी चाहिये कि इनमें एक सप्तक का अन्तर होता है अर्थात् चौथा लोहे का तार मन्द्र सप्तक के पंचम से मिलाया जाता है तथा पाँचवाँ पीतल का तार अति मन्द्र सप्तक के पंचम स्वर से मिलाया जाता है। बाद में छठे और सातवें तार को क्रमशः उनके स्वरों में सावधानी से मिलाना चाहिये। ये दोनों तार अधिकतर झाला बजाने के काम आते हैं।

मिजराबः—सितार बजाने के लिये लोहे के तार अथवा पीतल के मोटे तार का बना एक यंत्र होता है, जो सीधे हाँथ की तर्जनी उँगली में पहिना जाता है। सितार बजाने के लिये इस यंत्र को उँगली में पहिन कर तार पर प्रहार करते हैं जिससे तार में कम्पन होता है और कम्पन से ध्वनि उत्पन्न होती है।

मिजराब का तार पर दो प्रकार से प्रहार होता है। एक जब उँगली को तार पर पटकते हुए अपनी ओर लाना होता है जो आकर्ष-प्रहार कहलाता है। इससे 'दा' का बोल निकलता है। दूसरा प्रहार इसका उल्टा होता है, अर्थात् तार पर मिजराब का प्रहार करके उँगली को अपनी ओर से ले जाना होता है। इसे अपकर्ष-प्रहार कहते हैं और 'ढा' का बोल निकलता है।

कहने का अर्थ यह हुआ कि सितार के तार को बजाने के लिये उँगली दो प्रकार से चलाई जाती है। एक तो जब उँगली को अपनी ओर लाते हैं जिससे 'दा' निकलता है तथा दूसरे जब उँगली को अपनी ओर से दूसरी ओर ले जाते हैं। यह पहले का उल्टा होता है और इससे 'डा' का बोल निकलता है। इन्हीं दोनों प्रहारों को क्रमशः 'आकर्ष' और 'अपकर्ष' प्रहार कह कर पुकारते हैं।

सितार में यही 'दा' और 'डा' मुख्य दो बोल हैं। इन्हीं दोनों को मिलाने से 'दड़' बनता है, अर्थात् 'दा' और 'डा' बोलों को मिलाने से एक तोसरा बोल 'दिड़' बनता है। इन्हीं मुख्य बोलों को बिगाड़ कर दा डा, द्रा दाँ, दाड़, द्रा आदि बोल बना लिए गये हैं। बहुत से लोग 'डा' के बोल को 'रा' कह कर पुकारते हैं और इस प्रकार 'दाड़ा' को जगह वे 'दारा' कहते हैं।

जमजमा :—सितार में दो स्वरों को शीघ्रता से एक के बाद एक करके बजाने को जमजमा कहते हैं। यह काम दो उँगलियों की सहायता से होता है। पहली उँगली परदे पर रहती है तथा दूसरी उँगली काम करती है जिससे जमजमा उत्पन्न होता है।

तरबें :—कुछ सितारों में मुख्य सात तारों के नीचे और तार लगे रहते हैं। ये तार बजाये नहीं जाते बल्कि इन्हें भिन्न-भिन्न स्वरों से मिलाने पर इनसे ध्वनि उत्पन्न होती है, जिससे मधुरता आती है। इन तारों को अंग्रेजी में Sympathetic Strin कहते हैं। इन तारों को राग में लगने वाले स्वरों से मिलाते हैं।

थाट :—थाट के दृष्टिकोण से सितारों को दो विभागों में बाँटा गया है :—

(१) अचल थाट का सितार।

(२) चल थाट का सितार।

अचल थाट के सितार में स्वरों को बजाने के लिये कुल २४ पड़दे होते हैं। इन २४ पड़दों में सप्तक के शुद्ध तथा विकृत सभी स्वर होते हैं इसलिये इस सितार पर प्रत्येक थाट का राग बजाया जा सकता है। क्योंकि स्वर बदलने के लिये पड़दे खिसकाने की इस सितार में आवश्यकता नहीं होती। इसलिये इसे अचल थाट का सितार कहते हैं। इस सितार में मन्द्र सप्तक के तीव्र मध्यम से लेकर तार सप्तक के शुद्ध मध्यम तक के पड़दे होते हैं अर्थात् क्रमशः

म प ध ध नि नि सा रे रे ग ग म म प ध ध नि नि सां रें
रे गं गं म इस प्रकार होते हैं। कुछ लोग अचल थाट के सितार में

तार सप्तक का शुद्ध मध्यम का पड़दा नहीं बाँधते और इस प्रकार अचल थाट के सितार में कुल २३ पड़दे बाँधते हैं।

चल थाट के सितार में पड़दे बाँधने के अलग-अलग मत हैं। इसमें १६ से लेकर १६ तक पड़दे बाँधने का प्रचार है। अर्थात् कुछ लोग इसमें १६ पड़दे बाँधते हैं, कुछ लोग १७ पड़दे बाँधते हैं। कुछ लोग १८ पड़दे बाँधते हैं तो कुछ लोग १६ पड़दे बाँधते हैं। १६ पड़दे वाले चल थाट के सितार में क्रमशः ये स्वर होते हैं :—

म प ध नि नि सा रे ग म म प ध नि सां रें गं।

१७ पड़दे वाले चल थाट के सितार में मन्द्र सप्तक का कोमल धैवत

और जोड़ कर स्वर इस प्रकार होते हैं :— म प ध ध नि नि

सा रे ग म म प ध नि सां रें गं। १८ पड़दे वाले सितार में मध्य सप्तक की कोमल निषाद और लगाते हैं तथा स्वर क्रमशः :—

म प ध ध नि नि सा रे ग म म प ध नि नि सां रे

गं होते हैं। १६ पड़दे वाले चल थाट के सितार में तार सप्तक का शुद्ध मध्यम और लगाते हैं जैसे—म प ध ध नि नि सा रे ग म म प ध नि नि सां रे गं मं। इस प्रकार चल थाट के सितारों में पड़दे होते हैं। स्वरों को देखने से मालूम होता है कि सप्तक के शुद्ध तथा विकृत सभी स्वरों के लिये इस थाट के सितार में पड़दे नहीं होते और इसलिये आवश्यकता पड़ने पर किसी स्वर के पड़दे को खिसका कर दूसरा स्वर बना लिया जाता है। उदाहरण के लिये यदि किसी राग में कोमल गान्धार लगता हो तो शुद्ध गान्धार के पड़दे को खिसका कर कोमल गान्धार बना लिया जाता है। क्योंकि इस सितार के पड़दों को आवश्यकता के अनुसार खिसका लिया जाता है इसलिये इसे चल थाट का सितार कहते हैं।

गत :—राग के विभिन्न स्वरों में सितार के बोलों की सुन्दर रचना, जो ताल में बंधी होती है, गत कहलाती है। जिस प्रकार गायन में स्वरों की रचना से गीत बनता है उसी प्रकार स्वर-वाद्यों पर राग के स्वरों की तालबद्ध रचना को गत कहते हैं। सितार की गतों के दो विभाग हुआ करते हैं। जो स्थायी और अन्तरा कहलाते हैं। परन्तु कुछ ऐसी भी गतें सुनने में आती हैं जिनमें अन्तरा नहीं होता और केवल स्थायी ही होती है।

आज कल दो प्रकार की गतें प्रचलित हैं :—

विलंबित गत मसीतखानी :—कहते हैं कि तानसेन के वंशजी मसीत खाँ ने इस गत का प्रचार किया। मसीत खाँ के पिता फिरोज खाँ थे, इसलिये कुछ लोग मसीद खानी गत को फीरोज खानी गत

भी कहा करते हैं। यह गत विलम्बित लय में बजाई जाती है। इसके बोल दिङ्, दा दिङ् दा डा, दा दा डा दिङ्, दा दिङ् दा डा, दा दा डा होते हैं। इसे दिल्ली का बाज भी कहते हैं तथा इसमें गमक, जोड़, मीड़, मुर्की, जमजमा आदि का अधिक प्रयोग होता है। इस बाज में गम्भीरता अधिक होती है।

द्रुतगत रजाखानी:—भिजराव के बोलों को, अनेक प्रकार की चालों के साथ ताल में बाँध कर इस गत की रचना की गई है। इस के बोल हैं जैसे:—दा ऽङ् दा दा, ऽङ् दा दा डा, दा दिङ् दिङ् दिङ्, दा ऽङ् दा आदि होते हैं। इस गत को द्रुत लय में बजाया जाता है। जिस प्रकार गायन में तराने होते हैं उसी प्रकार इस गत की लय मानी जाती है। इसमें मसीतखानी गत की तरह गम्भीरता नहीं होती। इसे पूरव का बाज अथवा लखनऊ का बाज कह कर भी पुकारते हैं। द्रुत लय में तोड़े तथा झालों का काम इसमें बहुत सुन्दर लगता है।

सितार में मुख्य यही दो बाज हैं परन्तु एक तीसरे प्रकार का बाज भी प्रचार में आया है। इस बाज को अमीरखानी बाज कहा गया है लेकिन इसका महत्व अधिक नहीं है। मसीतखानी गत के बोलों को मध्यलय में बजाने से इस बाज की उत्पत्ति हुई है। यह बाज अधिक सरल है इसलिये प्रारम्भ में विद्यार्थियों को मध्यलय में इसी बाज की गतों का अभ्यास कराया जाता है। मसीतखानी गतों और अमीरखानी गतों में केवल लय का अन्तर है नहीं तो बोल दोनों के एक ही हैं। कुछ लोग इस बाज का अस्तित्व नहीं मानते और इसे मसीतखानी बाज के अन्तर्गत रखते हैं।

बाज:—सितार बजाने के ढङ्ग अथवा शैली को बाज कह कर पुकारते हैं। अधिकतर सितार पर ऊपर लिखी गतों को दो अंगों से बजाया जाता है।

(१) सितार अंग ।

(२) ख्याल अंग ।

ख्याल अंग में सितार पर विलंबित तथा द्रुत गतों का विस्तार ख्याल के ढङ्ग पर होता है । आधुनिक समय में अनेक सितारिये इस अंग को अपनाते हैं । इन दो अंगों के अतिरिक्त एक तीसरा अंग भी आधुनिक समय में सुनने को मिलता है जो 'ठुमरी अङ्ग' कहलाता है । अधिकतर जिम रागों में ठुमरी गायन का प्रचार है जैसे—खमाज, काफी, गारा, भिम्भोटी, पहाड़ी आदि इन्हीं रागों में सितार पर यह अङ्ग बजाया जाता है ।

जोड़ः—जिस प्रकार गायन में आलाप होते हैं उसी प्रकार सितार में जोड़ का काम होता है । गत बजाने के पूर्व, राग का स्वरूप स्पष्ट करने के लिये जोड़ बजाये जाते हैं । आलाप की तरह जोड़ों को भी हम चार विभागों में बाँट सकते हैं जो (१) स्थायी (२) अन्तरा (३) संचारी (४) आभोग कहलायेंगे । सबसे पहले राग के स्वरों में विलंबित लय में जोड़ का काम शुरू होता है । अधिकतर मन्द्र तथा मध्य सप्तक के स्वरों में विस्तार होता है । कभी-कभी अति मन्द्र सप्तक के स्वरों में भी विस्तार करते हैं । इन आलापों में मीँड़, मुर्की, जमजमा आदि का विशेष प्रयोग होता है । जोड़ के दूसरे भाग में अर्थात् अन्तरा में लय कुछ बढ़ा कर मध्यलय में स्वर-विस्तार किया जाता है । इस भाग में तीनों सप्तकों में स्वरों का विस्तार किया जाता है तथा मीँड़, गमक और मुर्की का काम अधिक होता है । तानों का भी प्रयोग किया जाता है और बीच बीच में जोड़ का सम भी दिखाया जाता है । जोड़ के तीसरे भाग अर्थात् संचारी में लय द्रुत हो जाती है । इसमें चिकारी का काम अधिक होता है साथ में गमक का प्रयोग सुन्दर लगता है । झाले का प्रयोग भी थोड़ा बहुत आरम्भ हो जाता है । झालय में तोड़ों (तानों) का प्रयोग अधिक होता है ।

चौथे भाग में अर्थात् आभोग में अति द्रुत लय में झाले का चमरकार देखने को मिलता है। तीसरे और चौथे भागों में भी बादक बीच बीच से जोड़ का सम दिखजाता है।

तोड़ा :—जिस प्रकार गायन में तानों का प्रयोग होता है उसी प्रकार सितार की गतों में तोड़े लिये जाते हैं। विभिन्न प्रकार के तोड़ों से गत को सजाया जाता है।

झाला :—सितार में चिकारी के तार पर मिझाब अथवा कनिष्ठा के नख के प्रहार से दा रा रा रा आदि बोलों को बजाने को झाला कहते हैं। झाले में बाज के तार पर भी प्रहार होता रहता है और स्वर रचना भी रहती है साथ ही चिकारी का काम भी होता है। इसलिये झाले का काम बाज तथा चिकारी दोनों तारों की सहायता से होता है। सितार पर यह कार्य बहुत मनमोहक मालूम पड़ता है। अधिकतर झाला बजाने के दो ढङ्ग होते हैं। एक सीधा जिसे 'सुलट' कहते हैं। इसमें पहले बाज के तार पर दा, बजता है फिर चिकारी के तार पर 'रा' जैसे—दा रा रा रा, दा रा रा रा आदि। दूसरा झाला उल्टा होता है जिसे 'उलट' कहते हैं। इससे पहले चिकारी पर 'रा' बजता है फिर बाज के तार पर 'दा' जैसे—रा दा रा दा, रा दा रा दा आदि।

सूत अथवा घसीट :—सूत प्रायः बिना पर्दे के बाजों पर बजाई जाती है तथा सितार पर इसे 'घसीट' के नाम से पुकारते हैं। नीचे के स्वर से ऊपर के स्वरों का एक ही पड़दे पर निकालने का नाम घसीट

नि, नि राग
है। जैसे— निसारे, रे ग म प। इस क्रिया करने के लिये पड़दे पर मध्यमांगुलि रख कर मिजाब से प्रहार करना चाहिए।

अब उसी पङ्क्ति पर तार को खींचते हुए। स्वरों को दिखलाते और
 के स्वरों को शीघ्रता से निकालना चाहिए। स्वरों को दिखलाते हुए
 मध्य के स्वर की आस लगाना चाहिए और यह क्रिया एक मात्रा
 ही शीघ्रता से करना चाहिए।



नवम अध्याय

जीवनियाँ

(१) शारंगदेव :—

१३ वीं शताब्दि में देवगिरी के यादव वंश के राजा के दरबार में पं० शारङ्गदेव रहते थे। ये काशमीरी ब्राह्मण थे। इनके पितामह पहले काशमीर में रहते थे जो बाद में दक्षिण भारत में आकर बस गये थे। शारङ्गदेव संगीत कला में निपुण थे। इनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य संगीत के प्रसिद्ध ग्रन्थ “संगीत रत्नाकर” को लिखना था। इस ग्रन्थ में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों कलाओं का पूर्ण वर्णन किया गया है। इसके पहले भी संगीत के कई ग्रन्थ लिखे जा चुके थे, परन्तु शारङ्गदेव ने उपलब्ध ग्रन्थों की सामग्री को इकट्ठा करके तथा उसमें अनेक नई परिभाषाओं को देकर इस ग्रन्थ की रचना की। ५ वीं शताब्दि में लिखा गया भरतमुनी का “नाट्य शास्त्र” प्राचीन संगीत का आधार ग्रन्थ माना जाता है। इसी प्रकार मतारंग, नागद आदि ने ग्रन्थों में संगीत के अनेक विषयों को समझाया गया है। परन्तु इन सब का वर्णन पं० शारङ्गदेव के वर्णन के समान नहीं हो सका है, हालाँकि इन सब के सिद्धान्त लगभग एक ही हैं।

शारङ्गदेव ने उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के संगीत का मेल करना चाहा और उसके लिये प्रयत्नशील हुए। इसी कारण उनके ग्रन्थ “संगीत रत्नाकर” को संगीत को उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों पद्धतियाँ

अथवा आधार ग्रन्थ मानते हैं। शारङ्गदेव ने नारद के सिद्धान्तों को स्वीकार किया है। उन्होंने ग्रामों में गान्धार ग्राम का वर्णन किया है साथ में वादी तथा संवादी स्वरों की श्रुतियों का अन्तर १३ अथवा ६ न मान कर आठ माना है। शारङ्गदेव ने अपने परिश्रम से दक्षिणी तथा उत्तरी संगीत पद्धतियों के मेल के साथ अपने काल (१३ वीं शताब्दि) तथा प्राचीन काल के संगीत में करने का भी प्रयत्न किया।

५० शारङ्गदेव के स्वर आधुनिक स्वरों को तरह नहीं थे क्योंकि ये स्वरांतर श्रुतियों के अंतर्गत रखते थे। इनकी वीणा के तार की लम्बाई ४४ इञ्च होती थी और मध्य षड्ज २२ इञ्च पर मानते थे। शारङ्गदेव ने कहीं भी वीणा मिलाने की पद्धति का वर्णन नहीं किया। इनके स्वर आधुनिक संगीत में प्रयोग करने से सब बेसुरे रहते हैं।

शारङ्गदेव के समय में भरत की जातियाँ नष्ट हो चुकी थीं और उन जातियों का स्थान मतंग के रागों ने ले लिया था। परन्तु शारङ्गदेव अपने राग, जिन्हें “आधुना प्रसिद्धा” कहते थे, प्रचार में लाये। इस कारण मतंग के राग भी लुप्त होने लगे।

शारङ्गदेव की प्रसिद्धि का मुख्य कारण उनकी अमर कृति “संगीत रत्नाकर” ही है। आधुनिक समय में भी इस ग्रन्थ का बहुत महत्त्व है और इसे प्राचीन संगीत का आधार ग्रन्थ माना जाता है।

(२) अमीर खुसरो

खुसरो का जन्म पटालिजले में। परियाली नामक स्थान पर हुआ था। ये गयासुद्दीन बलबन के दरबार में नौकर हो गये। बलबन के बाद जलालुद्दीन खिलजी गद्दा पर बैठा। खुसरो की योग्यता को देखकर जलालुद्दीन ने इन्हें “अमीर” की पदवी दी और तभी से खुसरो की जगह अमीर खुसरो के नाम से पुकारे जाने लगे।

जलालुद्दीन खिलजी के बाद दिल्ली की गद्दी पर अलाउद्दीन खिलजी बैठा। अलाउद्दीन इनकी योग्यता देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने इनका बहुत सम्मान किया। अलाउद्दीन ने इन्हें अपना राज-मन्त्री बनाया। राजमन्त्री होने के साथ ही साथ ये बहुत बड़े संगीतज्ञ और कवि थे। ये गायन तथा वादन दोनों में ही निपुण थे। अलाउद्दीन खिलजी के बाद गयासुद्दीन तुगलक गद्दी पर बैठा। तुगलक ने भी अमीर खुसरो का अच्छा सम्मान किया। अपने जीवन के अन्तिम समय में इन्हें संसार से विरक्ति हो गई और सन् ७२५ हिजरी में इनका स्वर्गवास हुआ।

अमीर खुसरो संगीत-संसार में बहुत प्रतिभाशाली स्थान रखते हैं। उन्होंने केवल गायन तथा वादन में निपुणता ही प्राप्त नहीं की बल्कि संगीत के क्षेत्र में कई नये आविष्कार किये। दक्षिण के सर्वोच्च संगीतज्ञ गोपाल नायक को इन्होंने संगीत कला में परास्त किया था। इससे इनकी योग्यता का पता चलता है।

अमीर खुसरो ने फारसी तथा भारतीय संगीत के मिश्रण के लिये अनेक प्रयत्न किये और दोनों देशों के संगीत के आधार पर जो आविष्कार किये वे इस प्रकार हैं :—

गायन :—अमीर खुसरो ने गायन में एक नयी गायन-शैली अर्थात् गायकी का आविष्कार किया जिसे उन्होंने “कव्वाली” कह कर पुकारा। आगे चल कर यही गायन “झोटा ह्याल” के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आज भी अनेक कव्वाल अपना सम्बन्ध अमीर खुसरो से बतलाते हैं।

गायन में दूसरा आविष्कार इन्होंने “तराना” नामक गायन-शैली का किया। ‘तराने’ के बोलों को इन्होंने बीणा के बोलों के आधार पर रक्खा। आजकल इस गायन का खूब प्रचार है। कुछ

लोगों का विचार है कि इस गायन का आविष्कार अमीर खुसरो और गोपाल नायक ने मिल कर किया ।

वाद्य :—अमीर खुसरो ने कई नये वाद्यों का आविष्कार किया । इस क्षेत्र में आपने सबसे प्रमुख वाद्य 'तबले' का आविष्कार किया । इन्होंने पखावज, जो एक प्राचीन वाद्य है, के दो भाग किये अर्थात् पखावज को दो विभागों में विभाजित कर दिया और इस प्रकार दाँये तथा बाँये दोनों तबलों का आविष्कार हो सका ।

खुसरो ने दूसरा आविष्कार 'सितार' नामक वाद्य का किया । उन्होंने वीणा तथा तानपूरे के मिश्रण से इस वाद्य का आविष्कार किया और उसको 'सहतार' कह कर पुकारा । इस वाद्य में उन्होंने केवल तीन तार लगाये 'सह' का अर्थ होता है 'तीन' और इस प्रकार 'सहतार' का अर्थ होता है 'तीन तार का वाद्य' । आगे चल कर 'सहतार' का नाम बिगड़ कर 'सितार' हो गया और परिवर्तनों के अनुसार तीन के स्थान पर अब सात तार इस वाद्य में लगाये जाने लगे ।

राग :—अमीर खुसरो ने अनेक नये रागों का आविष्कार किया, जैसे—सरपरदा, साजगिरी, यमन, रात की पुरिया, पूर्वी, बरारी तोड़ी इत्यादि ।

ताल :—उन्होंने कई नये तालों का आविष्कार किया जैसे—अ.ड़ा चौताल, सवारी, मूमरा, जल्द त्रिताल, पश्तो, सूलफाक इत्यादि ।

इस तरह हम अमीर खुसरो की योग्यता का भास प्राप्त कर सकते हैं । संगीत के साथ ही ये फारसी भाषा के प्रसिद्ध कवि थे । उनके इन्हीं गुणों को देख कर उन्हें राजमन्त्री का पद प्राप्त हुआ था । भारतीय संगीत आज भी इनका उकार मानता है और सदैव मानता रहेगा ।

(३) स्वामी हरिदास

महान संगीतज्ञ स्वामी हरिदास जी के जन्म के विषय में कुछ निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वानों का मत है कि उनका जन्म संवत् १४४७ में हुआ। परन्तु सर्व सम्मति से स्वामी हरिदास को अकबर बादशाह का समकालीन माना जाता है। स्वामी जी सनाढ्य ब्राह्मण थे। बाल्यावस्था से ही स्वामी जी की रुचि भजन-जन की ओर अधिक थी तथा समय के साथ ही साथ यह भक्ति-भावना भी बढ़ती गई। यहाँ तक कि २५ वर्ष की अवस्था में उन्होंने संसार के सब बन्धनों को छोड़ दिया और तपस्या करते हुए जावन व्यतीत करने लगे। स्वामी जी की मृत्यु के सम्बन्ध में भी कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगों के मत से इनकी मृत्यु संवत् १५३७ में हुई।

स्वामी हरिदास, संगीत सम्राट तानसेन के गुरु थे। स्वामी जी संगीत के प्रकांड विद्वान थे। जब अकबर बादशाह को यह मालूम हुआ कि स्वामी हरिदास तानसेन के गुरु हैं तब उसे उनका गाना सुनने की तीव्र इच्छा हुई। परन्तु स्वामी जी कोई साधारण गायक तो थे नहीं जो बादशाह के कहने से अथवा धन के लोभ से गाते। वे तो सन्यासी थे और उनकी दृष्टि में राजा और भिखारी समान थे। तानसेन ने सम्राट की इच्छा पूरा करने के लिये एक युक्ति सोची और इसमें वह सफल हुआ। अकबर बादशाह को भेष बदल कर वह चुन्दावन में स्वामी जी के आश्रम पर ले गया। आश्रम पर पहुँच कर स्वामी जी के सम्मुख जाते हुए तानसेन ने जानबूझ कर गाने में अशुद्धियाँ कीं, जिनको ठीक करने के लिये स्वामी जी स्वयं गाकर तानसेन को समझाने लगे। स्वामी जी के गाने का प्रभाव जड़ तथा चेतन सभी पर एक सा पड़ा। आश्रम पर अनेक पशु-पक्षी आकर शान्त भाव से एकत्रित हो गये तथा यमुना नदी का प्रवाह भी शान्त

होने लगा । अकबर ने अपने जीवन में कभी ऐसा संगीत नहीं सुना था । गाना समाप्त होने पर अकबर, स्वामी जी के चरणों पर गिर पड़ा । स्वामी जी ने उसे उठाते हुए कहा कि वे उसे पहिचान गये थे पर तानसेन की भक्ति-भावना के कारण वे कुछ न बोले । अकबर ने स्वामी जी को बहुत कुछ भेंट करना चाहा परन्तु उन्होंने कुछ स्वीकार नहीं किया । किंवदन्ती है कि संगीत सम्राट तानसेन को संगीत में पराजित करने वाला संगीतज्ञ वैजू वावरा भी स्वामी हरिदास का शिष्य था ।

ब्रज के अनेक कवियों की तरह स्वामी हरिदास जी भी ब्रज के संत कवि थे । स्वामी जी ने कोई पुस्तक तो नहीं लिखी परन्तु अनेक राग-रागनियों में उनके गेय पद मिलते हैं । इनके पदों की भाषा तो अधिक सुन्दर नहीं है परन्तु भाव उच्च है । स्वामी जी दृष्टी सम्प्रदाय के संस्थापक थे । इस सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र वृन्दावन में बाँके विहारी का मन्दिर है जो आज भी अपनी सुन्दरता तथा सजावट के लिये प्रसिद्ध है ।

स्वामी जी के कारण उनके समय में वृन्दावन, संगीत का प्रमुख केन्द्र हो गया था । स्वामी जी से ध्रुपद गायन की 'डागुर' परम्परा आरम्भ हुई । उनकी गायन शैली पृथक् थी और इसलिए उनकी शैली को 'डागुर' के नाम से पुकारा जाने लगा । गायन की विभिन्न शैलियों को 'बानियाँ' कह कर पुकारते थे तथा कुल बानियाँ चार थीं । आज भी कुछ ध्रुपद गायक अपने को 'डागुर बानी' का बतलाते हैं और इस प्रकार अपना सम्बन्ध हरिदास स्वामी की परम्परा से जोड़ते हैं ।

स्वामी हरिदास जी का नाम सदैव श्रद्धा और भक्ति से लिया जायगा तथा उनका काव्य और संगीत सदैव अमर रहेगा ।

(४) तानसेन

तानसेन का जन्म सन् १५४४ ई० में हुआ था। इनके जन्म स्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इनका जन्म स्थान लाहौर मानते हैं तथा कुछ लोग ग्वालियर के बहेट गाँव को। ग्वालियर राज्य में इनका जन्म हुआ, यह मत अधिक उचित जान पड़ता है। इनके पिता का नाम पं० मकरन्द भट्ट था। मकरन्द भट्ट के कोई सन्तान न होती थी इस पर शंकर भगवान की आराधना करने पर उन्हें एक पुत्र (तानसेन) प्राप्त हुआ। यह पुत्र ५ वर्ष तक मूक ही रहा, इसलिये शंकर भगवान की फिर से याचना की गई और फल स्वरूप तानसेन को मधुर कण्ठ प्राप्त हुआ।

तानसेन को छुटपन से ही संगीत से प्रेम था। उनकी बाणी भी भगवान शंकर की कृपा से अति मधुर थी। एक बार जब तानसेन वृन्दावन में थे तब स्वामी हरिदास ने उनका सरस बाणी को सुन कर उन्हें अपना शिष्य बना लिया। कुछ ही समय में तानसेन को स्वामी जी की विशेष कृपा प्राप्त हो गई और इस प्रकार तानसेन संगीत कला की उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके। संगीत का ज्ञान लेकर वे रीवाँ नरेश रामचन्द्र जी के दरबार में रहने लगे। राजा रामचन्द्र संगीत के बड़े पारखी थे। थोड़े ही समय में तानसेन का नाम फैलने लगा। जब अकबर बादशाह ने तानसेन का नाम सुना तब उसने निश्चय कर लिया कि ऐसा संगीतज्ञ उसके दरबार की शोभा के लिये अवश्य होना चाहिये। इससे सम्राट ने जलालुद्दीन कुर्ची नामक दरबारी को रीवाँ भेज कर तानसेन को अपने पास बुलवा लिया। तानसेन आगरा जाना नहीं चाहता था क्योंकि रीवाँ नरेश रामचन्द्र से उसे विशेष स्नेह हो गया था परन्तु सम्राट की आज्ञा को कैसे टाला जा सकता था।

तानसेन के बचपन का नाम तन्ना मिश्र था। ग्वालियर में रहने के कारण तन्ना के पिता और ग्वालियर नरेश का अच्छा परिचय था और आना-जाना भी खूब था। ग्वालियर नरेश तन्ना से बहुत प्रसन्न रहते थे और उन्होंने ही बचपन में तन्ना को 'तानसेन' की उपाधि दी थी। परन्तु कुछ लोगों का मत है कि तन्ना को 'तानसेन' की उपाधि अकबर सम्राट ने दी। अकबर तानसेन के गायन पर मुग्ध था और इसलिये उसने इन्हें तानसेन यानी "तान सम्राट" की उपाधि प्रदान की।

जब तानसेन आगरे पहुँचे तब उनका मन वहाँ नहीं लगा। परन्तु अकबर संगीत का बड़ा प्रेमी था, उसने तानसेन का सम्मान किया। उसने तानसेन को अपने नवरत्नों में प्रमुख स्थान दिया। कुछ लोगों का मत है कि अकबर ने तानसेन को प्रसन्न करने के लिये अपनी पुत्री का उससे विवाह कर दिया। अकबर के दरबार में भिन्न-भिन्न राज्यों तथा प्रान्तों के कुल ३६ संगीतज्ञ थे जिनमें तानसेन सर्वश्रेष्ठ थे।

तानसेन ब्रह्मण थे, पर बाद में उन्होंने मुसलमान धर्म अपना लिया था। तानसेन के मुसलमान होने में लोगों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। कुछ लोगों का कहना है कि तानसेन रीवाँ में ही रहना चाहते थे और अकबर बादशाह के दरबार में जाना पसन्द नहीं करते थे। परन्तु अकबर के कहने पर रीवाँ नरेश ने उन्हें आगरे भेज दिया था। यहाँ तक कहा जाता है कि तानसेन ने अकबर को कभी सीधे हाथ से सलाम नहीं किया क्योंकि उनका कहना था कि उनका सीधा हाथ केवल रीवाँ नरेश को हो सलाम दे सकता है अन्य किसी को नहीं। जब अकबर ने तानसेन को गाने के लिये कहा तब तानसेन ने इनकार कर दिया। इस पर अकबर बादशाह ने जो संगीत का अत्याधिक प्रेमी था तानसेन को प्रसन्न करने के लिये अपनी लड़की

की उनसे शादी कर दी। इस प्रकार तानसेन ने मुसलमान धर्म अपना लिया। कुछ लोगों का कहना है कि तानसेन प्रारम्भ से ही मुसलमानों के साथ रहते थे और इसलिये उन्हें जाति से निकाल दिया गया था। कुछ लोगों का विचार है कि तानसेन शेख मुहम्मद गौस से संगीत सीखना चाहते थे परन्तु गौस साहब मुसलमान को छोड़कर किसी अन्य को शिक्षा नहीं देते थे। इसलिये तानसेन को मुसलमान धर्म स्वीकार करना पड़ा। मुसलमान होने पर गौस साहब ने अपनी जिह्वा तानसेन की जिह्वा से भिजा दी जिससे तानसेन का कण्ठ सुमधुर हो गया।

तानसेन ने जो भी देन संगीत को दी है उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने कई नये आविष्कार किये जो इस प्रकार हैं :—

१) सुरवहार नामक वाद्य का आविष्कार उन्होंने वीणा और सितार के आधार पर किया।

(२) वीणा के ही आधार पर इन्होंने 'रबाब' नामक वाद्य का आविष्कार किया।

अभी तक संगीत वाद्यों पर केवल ध्रुपद अंग ही बजाते थे परन्तु इस समय से गतों का प्रचार हुआ !

(३) तानसेन ने अनेक नये रागों का आविष्कार किया तथा कई रागों का स्वरूप बदला। अपने रागों के नामों में इन्होंने "मियाँ" शब्द का प्रयोग किया जैसे—“मियाँ-मल्हार, मियाँ की सारंग, मियाँ की तोड़ी आदि। दरबारी कान्हड़ा भी इन्होंने रचा था।

तानसेन के दो पुत्र तानरंग खाँ और विलास खाँ थे। इनके घराने को 'हुसैनी' घराने के नाम से पुकारते हैं तथा तानसेन के वंशज "सैनी" कहलाते हैं। इनकी शिष्य परम्परा तीन भागों में विभाजित हो गई। (१) वीनकार (२) रबाविया (३) ध्रुपद गायक। तानसेन की मृत्यु सन् १५६५ में हुई।

(५) विष्णु दिगम्बर पालुष्कर

पं० विष्णु दिगम्बर पालुष्कर का जन्म कुरुन्दवाड़ रियासत बेलगाँव में सन् १८७२ ई० की श्रावण पूर्णिमा के दिन हुआ था। इनके पिता का नाम श्री दिगम्बर गापाल था और माता का नाम श्रीमती गंगा देवी था। बचपन में पंडित जी की आँखों में किसी प्रकार चोट लग जाने से वे कमजोर हो गई, और इस प्रकार इनकी पढ़ाई भी समाप्त हो गई। पढ़ाई समाप्त होने पर उन्होंने मिरज रियासत के राजा साहब के आश्रम में स्व० पं० बालकृष्ण बोवा इचलकरंजी वाले के पास संगीत कला का अभ्यास आरम्भ कर दिया। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह श्रीमती रामाबाई के साथ हो गया। इनके १२ बच्चे हुये, जिनमें केवल एक जीवित है और जिनका नाम प्रो० दत्तात्रेय विष्णु पालुष्कर है। आप संगीत के क्षेत्र में एक सितारे की तरह चमक रहे हैं और अपने सरस तथा मधुर संगीत से संगीत प्रेमियों का मन मोह रहे हैं।

सन् १८९६ ई० में पं० विष्णु दिगम्बर जी अपने गुरु जी से विदाई लेकर भ्रमण के लिये निकल पड़े तथा अपने सुमधुर संगीत से जनता को मंत्रमुग्ध कर लिया। सबसे प्रथम इन्होंने ५ मई सन् १९०१ में लाहौर में संगीत के प्रचार के लिये गान्धर्व महाविद्यालय की स्थापना की। इसी समय इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। पंडित जी ने आर्थिक कमी को पूरा करने के लिए एक बहुत बड़ा जलसा किया और संगीत की एक पत्रिका भी प्रकाशित की। इस प्रकार उनकी आर्थिक दशा कुछ सुधर गई। वह संगीत की पत्रिका १६ वर्ष तक चलती रही जो बाद में बन्द हो गई।

बम्बई में पंडित जी का बड़ा सम्मान हुआ। यह देखकर पंडित जी ने बम्बई में गान्धर्व संगीत महाविद्यालय का उद्घाटन समारोह दशहरे के दिन सन् १९०८ को किया। रुपये इकट्ठे कर लेने पर

पंडित जी ने विद्यालय के लिये १९१५ में भवन की नींव डाली और उसी वर्ष एक विशाल भवन बनकर तैयार हो गया। भवन बनने के कारण कर्ज अधिक हो गया और संगीत का यह भवन कर्ज में ही निकल गया। सन् १९२३ में बम्बई का विद्यालय बन्द हो गया। इसके बन्द होने के पहले से ही पंडित जी का मन राम भक्ति में रम गया था। इन्हें संसार से विरक्ति होने लगी थी। इसी समय से पंडित जी राम नाम के कीर्तन के साथ-साथ संगीत का प्रचार करने लगे। उन्होंने १९२२ में नासिक में 'राम नाम आधार' आश्रम खोला। पंडित जी भ्रमण करते हुये प्रत्येक नगर में जाकर अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करते थे। उन्होंने राम भक्ति के आधार पर देश भर में संगीत के प्रति एक पवित्र वातावरण स्थापित कर दिया।

आगे चलकर बम्बई के विद्यालय को मुख्य केन्द्र बनाया गया। पंडित जी की शिक्षा प्रणाली बहुत सुन्दर थी। वे अपने शिष्यों से बहस करते थे जिससे उनके शिष्य नई-नई खोज कर सकें। पंडित जी के लगभग १०० शिष्य निकले जिनमें से कुछ तो भारतीय संगीत के उच्च कलाकार हैं, जैसे—पं० ओमकारनाथ ठाकुर, विनायक राव पटवर्धन, नारायण राव व्यास, दी० आर० देवधर, एस० एस० बोडस, वि० एन० कशालकर इत्यादि। पंडित जी के लगभग सभी शिष्य अध्यापन द्वारा भारत के भिन्न-भिन्न शहरों में संगीत का प्रचार कर रहे हैं।

पंडित जी के गीतों में भक्ति रस का प्राबल्य था। वे सदैव ही रामभक्ति में लीन रहा करते थे। "रघुपति राघव राजाराम" उनका प्रिय कीर्तन था।

रामभक्ति के साथ उनके हृदय में राष्ट्रीय भावनाएँ भी ओत-प्रोत थी। वे प्रायः अपने शिष्यों के साथ राष्ट्रीय सभाओं में राष्ट्रीय गान गाया करते थे।

पंडित जी ने छोटी बड़ी सब भिला कर लगभग ५० पुस्तकें लिखी तथा एक स्वतन्त्र स्वर-लेखन-पद्धति अथवा स्वर-लिपि-पद्धति बनाई, जो कि विष्णु दिगम्बर पद्धति के नाम से प्रसिद्ध है। यह पद्धति बहुत सूक्ष्म है पर साथ में कुछ कठिन भी है।

पंडित जी का स्वर्गवास मिरज में २१ अगस्त सन् १९३१ को हुआ। उनकी स्मृति में गान्धर्व महाविद्यालय मंडल की स्थापना की गई, जिसने सङ्गीत का एक पाठ्यक्रम तैयार किया और उत्तीर्ण विद्यार्थियों को उपाधियाँ देना आरम्भ किया। इसका मुख्य केन्द्र आज भी बम्बई है तथा भिन्न-भिन्न नगरों में संगीत के विद्यालयों में इसके पाठ्यक्रम का अभ्यास कराया जाता है। पंडित जी की स्मृति में प्रत्येक वर्ष अनेक नगरों में उनकी पुण्य तिथि पर उत्सव तथा कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं।

(६) पं० विष्णु नारायण भातखण्डे

पं० भातखण्डे जी का जन्म बम्बई प्रान्त के बालकेश्वर नामक स्थान में १० अगस्त सन् १८६० में कृष्ण जन्माष्टमी के दिन एक उच्च ब्राह्मण वंश में हुआ था। इनके माता पिता सङ्गत के बड़े प्रेमी थे। पंडित जी ने सन् १८८३ ई० में बी० ए० तथा सन् १८९० ई० में एल एल० बी० की परीक्षा पास की। उच्च शिक्षा ग्रहण करके लाहौर शहर में वकालत करना शुरू कर दिया। पंडित जी गायन में निपुण थे, साथ ही सितार और बाँसुरी भी बहुत अच्छी बजाते थे। इन्होंने संगीत विद्या को कई गुरुओं के द्वारा प्राप्त किया था। इनके मुख्य गुरु मोहम्मद अली खाँ थे, जो जयपुर में रहा करते थे। इनके अन्य गुरुओं में ग्वालियर के श्री एकनाथ पंडित, रामपुर के नवाब कलबे अली खाँ तथा पं० बुवा बेलबाधकर थे। सितार की शिक्षा पंडित जी ने सेठ बल्लभदास से प्राप्त की थी।

पंडित जी का विचार सङ्गीत सम्बन्धी खोज करना था और इसलिये ये एकाग्र चित्त होकर सङ्गीत की ओर मुक्त गये। सन् १९०४ ई० में इन्होंने भ्रमण करना शुरू कर दिया। जगह-जगह जाकर इन्होंने पुस्तकालयों में सङ्गीत सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन किया और जगह-जगह के संगीतज्ञों से वाद-विवाद भी किया।

सन् १९१६ ई० में पंडित जी ने बड़ौदा में एक बड़ा सङ्गीत सम्मेलन किया। इस सम्मेलन (Conference) का उद्घाटन स्वयं बड़ौदा नरेश ने किया। इस सम्मेलन के परिणाम स्वरूप इन्होंने सन् १९१६ में “आल इन्डिया म्यूजिक ऐकाडमी” खोली। इस सङ्गीत सम्मेलन के बाद पंडित जी ने भिन्न-भिन्न नगरों में जाकर सङ्गीत सम्मेलन किये जिनमें दिल्ली, बनारस, लखनऊ आदि प्रमुख हैं। पंडित जी ने सङ्गीत के तीन विद्यालय खोले पहला लखनऊ में ‘मैरिस म्यूजिक कालेज’ जो आजकल ‘भातखण्डे सङ्गीत विद्यापीठ’ कहलाता है। दूसरा सङ्गीत विद्यालय ग्वालियर में खोला जो “माधव सङ्गीत महाविद्यालय” के नाम से प्रसिद्ध है तथा तीसरा बड़ौदा में खोला। इन विद्यालयों के द्वारा सङ्गीत का बहुत प्रचार हुआ। इन संस्थाओं ने अपने निर्धारित पाठ्यक्रम तैयार किये और उत्तर्ण छात्रों को उपाधियाँ भी प्रदान कीं। आजकल ये विद्यालय भारतीय सङ्गीत की प्रमुख संस्थाएँ मानी जाती हैं।

ध्यान से देखने पर हम पंडित जी काम चार विभागों में बाँट सकते हैं :—

(१) सबसे पहला कार्य जो प० भातखण्डे जी ने किया वह सङ्गीत कला और शास्त्र का मेल था। उन्होंने प्रचलित और अप्रचलित रागों की खोज करके थाट-राग पद्धति में बैठाया। उन्होंने कुल १० थाट माने और हिन्दुस्तानी सारे राग इन्हीं थाटों के अन्तर्गत रक्खे। इस प्रकार जनक-जन्य पद्धति अथवा थाट-राग पद्धति को प्रचार में लाये।

(२) दूसरा महत्वपूर्ण कार्य, पण्डित जी ने यह किया कि बड़े बड़े उस्तादों के पास जाकर उनसे उनकी खानदानी चीजों (गीतों) को लेकर इकट्ठा किया। इन सब खानदानी चीजों को उन्होंने “क्रमिक पुस्तक मालिका” के छै भागों में प्रकाशित किया। इनका यह कार्य बहुत सराहनीय है। इस प्रकार संगीत की पुराना चीजें (गीत) अमर हो गयीं।

(३) पण्डित जी का तिसरा महत्वपूर्ण कार्य एक नई नोटेशन पद्धति अर्थात् स्वर-लाप पद्धति को बनाना था। उन्होंने एक स्वतन्त्र स्वर-लेखन-पद्धति अथवा नोटेशन पद्धति स्थापित की, जो सरल होने के साथ-साथ वैज्ञानिक भी है।

(४) चौथा कार्य पण्डित जी की आधुनिक संगीत शिक्षा प्रणाली का है कुछ लोगों में पण्डित जी के कार्यों की आलोचना भी की पर अनक आक्षेप किये गये। पण्डित जी का प्रत्येक कार्य सराहनीय है और सङ्गात जगत सदैव उनका आभारी रहेगा। इसलिये उन्हें भारतीय संगीत-शास्त्र के प्राणदाता कह कर पुकारते हैं।

पण्डित जी ने भारतीय संगीत पर अँग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी और मराठी भाषाओं में कई पुस्तकें लिखीं। इनके कुछ ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं :—‘हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका, (६ भागों में), ‘अभिनव राग मंजरी’ (संस्कृत में), ‘हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति’ (४ भाग मराठी भाषा में), ‘स्वर मालिका (गुजराती भाषा में), ‘लक्ष्य संगीत’ (संगीत में) इत्यादि।

पण्डित जी ने इस प्रकार संगीत की सेवा बड़े परिश्रम से की और १६ सितम्बर सन् १९३६ में परलोक सिधारे।

दशम अध्याय

रागों का सम्पूर्ण परिचय

(१) राग-कल्याण (यमन)

दोहा—सबही तोवर सुर जहाँ वादि गंधार सुहाय ।
अरु संवादी निखादते ईमन राग कहाय ॥

थाट—कल्याण,
वादी—गाँधार,
समय—रात्रि का प्रथम प्रहर,

आरोह—सा रे ग म प ध नि सां ।

अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा ।

पकड़—नि रे ग रे, सा, प म ग, रे, सा

कल्याण राग में मध्यम तीव्र तथा वादी सब स्वर शुद्ध लगते हैं। 'कल्याण' इस राग का प्राचीन नाम है परन्तु मुसलमानों के समय से इसे 'यमन' या 'ईमन' कह कर पुकारने लगे। कभी-कभी इस राग में शुद्ध मध्यम का प्रयोग करते हैं तब इसे 'यमन-कल्याण' कह कर पुकारते हैं जैसे—नि रे ग, म ग, रे ग, रे सा। करुण रस की इस राग में प्रधानता है। गान्धार स्वर वादी होने से यह पूर्वांग वादी है। पूर्वांग में आरोह करते हुये अधिकतर 'सा' को छोड़कर

‘नि रे ग’ कहते हैं तथा उत्तरांग के स्वर कहते हुये ‘प’ स्वर को छोड़ कर ‘मं ध नि सां’ इस प्रकार कहते हैं ।

स्वर-विस्तार

- (१) नि रे, सा, नि रे ग, रे सा, नि ध, नि रे ग, ग रे, नि रे सा ।
- (२) नि रे ग, रे सा, नि रे, सा, नि ध, नि रे ग, रे, नि रे, सा, नि ध प, मं ध नि, रे ग, ग रे, नि रे सा ।
- (३) ग, रे, सा, ध नि रे ग, रे ग मं ग, प, मं ग, रे ग, रे, नि रे, सा ।
- (४) नि रे ग मं प, मं ध प, मं ग, मं ध, नि ध प, मं ध, सां, नि ध प, मं ग, रे ग, रे, नि रे सा ।
- (५) ग, मं ध नि सां, नि रें, सां, नि रें गं, रें सां, नि ध, नि ध प, मं ग, रे ग, रे सा, नि रे सा ।

(२) राग-विलावल

दोहा—मृदु मध्यम तीवर सबही सुर सोहत जेहि माहि ।
धग वादी संवादि है कहत विलावल ताहि ॥

थाट—बिलावल,

वादी—धैवत,

समय—दिन का प्रथम पहर,

आरोह—सा रे ग म प ध नि सां ।

जाति—संपूर्ण,

संवादी—गान्धार,

अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा ।

पकड़—ग म रे, ग प, ध, नि सां ।

बिलावल राग में सत्र स्वर शुद्ध लगते हैं । इस राग में गान्धार तथा निषाद स्वरां का प्रयोग वक्र होता है जैसे—“ग म रे ग प” या “ग म रे सा” तथा “नि ध मां” । जब इन राग के अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग धैर्य स्वर के सहारे होता जैसे—“सां नि ध नि ध प” अथवा “सां नि ध प ध नि ध प” तब यह राग अल्हैया-बिलावल कहलाता है । राग बिलावल की अपेक्षा अल्हैया बिलावल अधिक प्रचलित है । इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार होता है :—सा, रे, ग रे, ग प, ध, नि ध, नि सां । सां नि ध, प, ध नि ध प, म ग, म रे सा । पकड़—व नि ध प, ध ग, म रे सा । इस राग के आरोह में अधिकतर मध्यम स्वर को वर्ज करने का प्रचार है जैसे ग प ध नि सां ।

स्वर विस्तार

- (१) सा रे, सा, ग, रे, सा, नि ध, प ध सा, ग, रे ग, प, म ग, म रे, सा ।
- (२) सा, ग, रे ग, र, म ग, म रे, ग प, ध प म ग, म रे, ग मप, म ग, म रे, सा ।
- (३) सा रे ग म रे, सा, ग रे, ग प ध प, म ग, रे ग प, ध नि सां, सां, ध प, म ग, म रे, सा ।
- (४) (कोमल निषाद के साथ)—ग प, ध नि सां, सां, नि ध, नि ध प, ध, ग, रे ग प, ध नि ध प, म ग रे, ग प ध नि सां, रें सां, ध नि ध प, म ग, म रे सां ।

(५) प प, ध नि सां, रें सां, गं मं रें सां, ध नि ध प, ध, ग, प, म
ग, म रे, ग प ध नि, रें सां, ध प, ध नि ध प, म ग, म रे,
सा ।

(३) राग-खमाज

दोहा—चढ़त रिखब न लगाइये, कोमल मनी विराज ।
गनि वादी सम्बादितें, कहियत राग खमाज ॥

थाट—खमाज, जाति—पाडव—संपूर्ण,

वादी—गान्धार, संवादी—निषाद,

समय—रात्रि का दूसरा पहर,

आरोह—सा ग म प ध नि सां ।

अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा ।

पकड़—नि ध, म प ध, म ग ।

खमाज राग में दो निषाद तथा बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं ।
इसके आरोह में शुद्ध निषाद तथा अवरोह में कोमल निषाद लिया
जाता है । आरोह में 'रे' स्वर वर्जित है इसलिये इस राग का
आरोह पाडव जाति का है । परन्तु अवरोह में सब स्वर लगते हैं
अर्थात् अवरोह संपूर्ण है । खमाज एक मधुर राग है और इसमें
शृंगार रस की प्रधानता है । यह क्षुद्र प्रकृति का राग है इस लिये
इसमें ठुमरी, दादरा, गजल आदि अधिक गाई जाती हैं । आरोह
में अधिकतर पंचम को छोड़ देते हैं जैसे—ग म ध नि सां । परन्तु
ग म प नि सां अथवा 'ग म प ध नि ध' इस प्रकार पंचम लेते हैं ।

स्वरविस्तार

(१) नि, सा ग, म ग, रे सा, ग म ग, प, म ग, रे सा ।

(२) नि सा ग म ग, प म ग, म, नि ध, म प ध, म ग, प, म ग,
रे सा ।

(३) नि सा ग म प, ग म, नि ध, म प ध, म ग, ग म प ध नि ध,
म प ध, म ग, ग म प ध नि सां नि ध, म प ध, म ग, प, म
ग रे सा ।

(४) ग म ध नि सां, नि सां, नि ध, नि सां रें सां, नि ध, म प ध,
म ग ग म ध नि सां, गं, मं गं रें सां, नि सां, रें सां, नि सां,
नि ध म प ध, म ग ।

(५) ग म ध नि सां, गं, मं गं रें सां, नि ध, म प ध, म ग, ग म नि ध
म प ध, म ग, प, म ग रे सा ।

(४) राग भैरव

दोहा:—भैरव कोमल रिमध स्वर, तोख गंधार निखाव ।

धैवत वादी सुर कह्यो, तासु रिखव संवाद ॥

थाट—भैरव, जाति-संपूर्ण,

वादी—धैवत, संवादी-ऋषभ

समय—प्रातः काल

आरोह—सा रे ग म प ध नि सां ।

अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा ।

पकड़ — सा, ग, म प, ध प ।

राग सैरष में ऋषम और धैवत स्वर कोमल तथा वाकी स्वर शुद्ध लगते हैं । यह प्रातः कालीन संधिप्रकाश राग है, क्योंकि यह सुबह, रात और दिन की संधि बेला में गाया और बजाया जाता है । रे तथा ध स्वर इस राग के विशेष स्वर हैं इन स्वरों पर बार-बार अन्दोलन किया जाता है जैसे— ग रे ग रे तथा नि ध नि ध इस प्रकार कोमल रे पर शुद्ध गान्धार का कण तथा कोमल ध पर शुद्ध निषाद का कण लेते हैं । सभी-कमो विवादी स्वर के ताते कोमल निषाद का भी प्रयोग कुछ लोग करते हैं ।

स्वर विस्तार

- (१) सा, रे, रे, सा, नि सा, ध, ध, सा, रे, सा, ग रे सा ।
- (२) नि सा, रे सा, ग म, रे, रे, सा नि सा, ग रे, प म ग रे, रे सा, नि सा ।
- (३) ग म रे, रे, सा, नि सा, ध, ध, सा, रे, सा, ग म र, म ग रे, ग म, रे, रे, सा ध, ध, नि सा रे ।
- (४) ग म, ध, ध, प, प, म प, म ग रे, ग म ध, प, ग म प, म ग रे रे, ग प, म ग रे, रे सा ।
- (५) ग म ध, नि सां, नि सां, ध ध सां, रे सां, गं मं रे रे, सा

नि सां, ध प, म ग, म प, ध, ध, प म ग रे, रे, ग म प,
म ग, रे, रे सा ।

(५) राग काफ़ी

दोहा—मृदु मध्यम गंधार है, मृदु तीवर हूँ निखाद ।

काफ़ी सुन्दर राग है, पस वादी संवाद ॥

थाट—काफ़ी,

जाति—संपूर्ण,

वादी—पंचम,

संवादी—षड्ज

समय—मध्य रात्रि,

आरोह—सा रे ग म प ध नि सां ।

अवरोह—सा नि ध प म ग रे सा ।

पकड़—सा सा, रे रे, ग ग, म म, प ।

राग काफ़ी में गान्धार और निषाद कोमल तथा बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं । कभी-कभी गायक सुन्दरता के लिये काफ़ी राग में शुद्ध गान्धार तथा निषाद शुद्ध का प्रयोग करते हैं । इन स्वरों का प्रयोग राग में इस प्रकार होता है—म प ध नि सां, नि ध प, म ग म, प ग रे सा । जब इस राग में दोनों गान्धार तथा दोनों निषाद का प्रयोग होता है तब गायक लोग इसे मिश्र काफ़ी कह कर पुकारते हैं । यह एक मधुर तथा प्रिय राग है । होली के उत्सव के समय इस राग को हर समय गाते हैं । राग की प्रकृति क्षुद्र होने से इसमें होली ठुमरी दादरा अधिक गाये जाते हैं ।

स्वर विस्तार

(१) सा, नि सा रे, सा, रे रे ग, सा, रे, प, म प, ग, रे, रे म प,

म प, ग रे सा, रे प ।

(२) नि सा, रे ग, सा, रे, प, म प, ध म प, ग रे, रे म प ध
म प, ग, रे, म प, म ग रे, सा ।

(३) सा सा, रे ग, सा, रे, प, म प, रे म प ध नि, ध प, ध म प,
ग रे, रे प, म प, ग रे सा, सा सा, रे ग, सा रे प ।

(४) म प ध नि सां, नि सां, नि ध प, म प, ग म प ध नि सां,
नि ध प, म प ग रे, रे म प ध नि ध प, म प, ग रे सा,
सा, रे प ।

(५) म प ध म, प ध सां, सां रें सां, नि ध सां, नि ध प, प ध
सां रें गं, रें, सां, नि सां, नि ध प, म प, ग रे, रे प, म प
ग रे सा, रे सा ।

(६) राग-आसावरी

ढोहा—कोमल ग म ध नि तीख रिखव, चढ़त गनी न सुहाइ ।

ध ग वादी संवादितें, आसावरी कहाइ ॥

थाट—आसावरी, जाति—झौडव—संपूर्ण,

वादी—धैवत, संवादी—गान्धार,

समय—दिन का दूसरा प्रहर,

आरोह—सा रे म प ध सां ।

नोट :—स्वर विस्तार सं० ४ और ५ में शुद्ध गान्धार तथा शुद्ध
निषाद का प्रयोग किया गया है ।

अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा ।

पकड़—रे, म, प, नि ध प ।

आसावरी राग में ग, ध, नि, स्वर कोमल तथा बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। इसके आरोह में गन्धार तथा निषाद स्वर नहीं लगते इसलिये इसका अ रोह औडव जाति का है तथा अवरोह सम्पूर्ण है। अवरोह में यह राग स्पष्ट होता है। राग का मुख्य स्वर-समूह इस प्रकार होता है—म प ध म प ग रे सा। इसे राग को स्पष्ट करने के लिये बार-बार लिया जाता है। आरोह में धैवत पर ठहराव होता है। इस राग के निकट का राग जौनपुरी है जिससे इसे सदैव बचाये रखना चाहिये। आसावरी के आरोह में निषाद लगाने से राग जौनपुरी होता है। कभी-कभी गायक इस राग में कोमल ऋषभ का प्रयोग करते हैं तब इसे कोमल-आसावरी कह कर पुकारते हैं।

स्वर-विस्तार

(१) सा, रे सा, ध, ध, सा, रे म, प, प, ग, रे सा, सा नि ध, प,
म प ध, सा, सा रे सा ।

(२) सा, रे म, प, प, ध, प, ध म, प ध म प, ग, ग, सा,
रे म, प, म प, नि ध, प, म, प, ध म, प, ग, रे सा, सा,
रे म, प ध म प ।

(३) म प ध म प, नि ध प, ध म, रे म प ध, म प, ग, रे सा,
सा रे म, प, नि ध प, म प, ध, सां, नि ध प, ध म प, ग,
रे सा ।

(४) सा रे म प, प, ध, प, म प ध प, ग, रे म प ध म प, ग,
रे सा, रे म प, ध प, म प, ध सां, सां, रें, नि ध प, म प
नि ध प ।

(५) म प, ध, ध, सां, सां रें सां, सां रे गं रें, सां, रें नि ध प,
म प, ध सां, मं गं, रें, सां, ध ध, सां, रें गं रें सां, नि ध, प
म प नि ध प; म प, ग, रे सा ।

(७) राग-भैरवी

दोहा—सब कोमल सुर भैरवी, संपूरन सुर होइ ।
मस वादी संवादि है, सब जो चाहे कोइ ॥

थाट—भैरवी, जाति—संपूर्ण,
वादी—मध्यम, संवादी—षड्ज्
समय—प्रातःकाल,
आरोह—सा रे ग म प ध नि सां ।

अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा ।

पकड़—म, ग, सा रे सा, ध नि सा ।

राग भैरवी में रे, ग, ध, नि स्वर कोमल तथा बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं । ऊपर के दोहे में भी लिखा है कि भैरवी में सब स्वर कोमल लगते हैं । कहने का अर्थ यह है कि रे, ग, म, ध, नि ये पाँचों स्वर कोमल हैं (मध्यम शब्द को कोमल मध्यम भी कहते हैं ।) आजकल

भैरवी में सप्तक के १२ स्वरों को लगाने का प्रचार है अर्थात् ५ चल स्वरों के शुद्ध तथा विकृत दोनों रूप प्रयोग किये जाते हैं। परन्तु कुछ विद्वानों का कहना है कि १२ स्वरों की भैरवी को शुद्ध नहीं कहा जा सकता। अधिकतर गायक भैरवी में शुद्ध ऋषभ, शुद्ध धैवत तथा तीव्र मध्यम का प्रयोग करते हैं। इन तीन स्वरों का प्रयोग लगभग सभी गायक करते हैं। भैरवी एक अति लोक-प्रिय राग है। इसके वादी स्वर के लिये लोगों में मतभेद है। कुछ लोग इसका वादी स्वर पंचम मानते हैं, कुछ धैवत तथा कुछ मध्यम। मध्यम स्वर को वादी मानने से इस राग में कुछ गंभीरता आ जाती है। इस राग की प्रकृति शुद्ध मानी जाती है और ठुमरी, दादरा, गजल, टप्पा आदि इसमें अधिक गाये जाते हैं।

स्वर विस्तार

(१) सा, रे सा, ध, नि, सा, ग, सा, रे सा, नि स, नि ध
प, म, ध, नि, सा, रे सा।

(२) नि सा, ग, रे सा रे सा, ध नि सा रे ग, रे ग, सा रे
सा, नि सा, स म प, म प, म ग, म ग रे सा।

(३) नि सा ग म प, ग म प ध प, नि ध प, म प, म ग,
सा, ग, म, प, म ग, सा रे सा, ध नि सा।

नोट:—स्वर विस्तार सं० २, ४, ५, में शुद्ध ऋषभ प्रयोग किया गया है, स्वर विस्तार सं० ४, में शुद्ध धैवत प्रयोग किया गया है तथा स्वर विस्तार सं० ५ में तीव्र मध्यम प्रयोग किया गया है।

(४) नि सा ग म प ध प, प ध नि, ध नि ध प, ग म, प ध
प, म ग, म ग, सा ग म प, म ग, सा रे सा, ध नि
सा रे ग, म ग, सा रे पा ।

(५) ग म ध, नि सां, रे सां, नि सां, ध प, म ग, म ध नि
सां, रे सां, सां रे गं, सां रे सां, नि सां रे सां, नि सां, ध
प, म ग, म ध प, म ग, म ग, सा ग म, म म ग, सा
रे सा ।

(ट) राग-मारवा

दोहा:— तीखे ग म ध नि सुर रिखव, कोमल पंचम नाहि ।

धरि संवादी वादितें, कहत मारवा ताहि ॥

थाट—मारवा,

जाति—षाडव—षाडव

वादी—ऋषभ,

संवादी—धैवत

समय—दिन का अंतिम प्रहर

आरोह—सा रे ग म ध नि ध सां ।

अवरोह—सां नि ध म ग रे सा ।

पकड़—ध म ग रे, ग म ग, रे, सा ।

इस राग में तीव्र मध्यम, कोमल ऋषभ तथा बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं । इसमें पंचम स्वर वर्जित है इसलिये इसकी जाति षाडव है । ऋषभ तथा धैवत इस राग के प्रबल स्वर हैं और अधिक-

तब इन्हीं स्वरों पर आलाप तान समाप्त किये जाते हैं। यह उत्तरांग प्रधान है। कभी कभी गान्धार स्वर पर भी ठहराव होता है परन्तु अधिक ठहरने से राग पूरिया होने का डर रहता है। षड्ज स्वर का प्रयोग, वक्र रूप में होता है जैसे—सां नि रे। अधिकतर षड्ज छोड़ दिया जाता है जैसे—नि रे ग तथा न रे नी ध। कुछ लोग इस राग का आरोहावरोह इस प्रकार करते हैं—नि रे ग मं ध नि रे। रे नि ध मं ग रे। इस राग को सोहनी तथा पूरिया रागों से बचाना चाहिये। अवरोह में सां नि ध मं न कह कर रे नि ध मं कहते हैं। जिससे यह राग सोहनी से बच जाता है। यह राग सायंकालीन संधिप्रकाश राग है। कुछ लोग इस राग में धैवत बादी तथा गान्धार सवादी मानते हैं यह राग करुण रस प्रधान है।

स्वर विस्तार

(१) नि रे सा, ग, रे, सा, नि रे ग, मं ग, रे ग, मं ग
रे, सा।

(२) नि रे ग, मं ध मं ग, रे, ग मं, ग रे सा, नि रे ग,
मं ध, ध मं ग, रे, ग मं ध, मं ध नि ध, मं ग रे,
ग मं ग रे सा।

(३) नि रे ग मं ध, मं ध, नि ध, मं ग, नि ध, मं ग, ग
मं, नि ध, मं ध, मं नि ध, मं ग, रे ग, मं म रे सा।

(४) ग, मं ग, मं ध मं, ध नि ध सां, रे नि ध, मं ध, मं

नि ध, मं ग, मं ध मं, सां, सां, नि रें सां, गं रें सां, नि
रें सां, नि रें नि ध, मं ध मं ग, मं ग रे सा ।

(५) ग, मं ध, नि ध, सां, नि रें सां, नि रें, गं रें सां, मं गं रें सां,
नि रें नि ध, मं ध मं, सां, नि ध, मं ग, रे ग, मं ग रे सा ।

(६) राग-पूर्वी

दोहा—कोमल रिध तीवर गनी, दोऊ मध्यम लाग ।

गनि वादी संवादितें, बनत पूर्वी राग ॥

थाट—पूर्वी,

जाति—संपूर्ण,

वादी—गान्धार,

संवादी—निषाद,

समय—सायंकाल,

आरोह—सा रे ग मं प ध नि सां ।

अवरोह—सां नि ध प मं ग रे सा ।

पकड़—नि, सा रे ग, म ग, मं, ग, रे ग रे सा ।

राग पूर्वी में रे, ध कोमल, दो मध्यम तथा बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं । इस राग में तीव्र तथा शुद्ध दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है । शुद्ध—मध्यम गान्धार स्वर के सहारे लिया जाता है जैसे—ग म ग, या रे म ग रे सा । कुछ लोग इसमें शुद्ध मध्यम का प्रयोग बिल्कुल नहीं करते परन्तु आधुनिक समय में लगभग सभी ख्याल गायक दोनों मध्यमों का प्रयोग करते हैं । इस राग का मुख्य स्वर समुदाय जिसे बार-बार कह कर राग स्पष्ट किया जाता है इस प्रकार है—प

मं ग म ग, रे म ग । यह सांयकालीन संधि प्रकाश राग है क्योंकि इसे शाम को दिन तथा रात की संधि बेला पर गाते ।

स्वर विस्तार

(१) सा, नि रे सा, ग रे, सा, सा रे ग, मं ग, रे ग, रे, सा, नि रे सा ।

(२) सा रे ग, रे, सा, नि, सा रे ग, मं ग, मं प, मं ग, म ग, प ध मं प, ग म ग, रे ग, रे, सा ।

(३) नि सा ग, रे, ग मं प, मं प, ग म ग, ध प, मं प, ग म ग, रे म ग, रे सा, नि सा ग मं प, मं ध मं ग, रे ग, मं ग, रे ग, रे, सा ।

(४) नि रे ग मं प, ध प, नि ध, प, मं प ध मं प, मं ग म ग, ध प, ध मं प मं ग, म ग, मं ध प, मं प, मं ग, रे म ग, रे सा ।

(५) मं ग, मं ध प, सां, सां, नि रें सां, नि ध नि रें नि ध प, मं ग, म ध, सां, नि रें सां, नि रें, ग रें सां, नि ध, नि रें नि ध, प, मं ध नि ध, प, मं प मं ग, म ग, रे ग, रे, सा ।

(१०) राग—तोड़ी

बोद्धाः— तोखे मनि कोमल रिगध, वादी धैवत साज ।

संवादी गंधार है, तोड़ी राग बिराज ॥

थाट—तोड़ी,

जाति—संपूर्ण,

वादी—धैवत

संवादी—गंधार

समय—दिन का दूसरा प्रहर,

अरोह—सा रे ग म प ध नि सां ।

अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा ।

पकड़—ध नि सा, रे, ग, रे, सा, म, ग, रे ग, रे, सा ।

इस राग में रे, ग ध स्वर कोमल, मध्यम तीव्र तथा बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। इस राग में गान्धार स्वर अति कोमल लगता है जो कोमल गान्धार से कुछ नीचा होता है। अरोह में पंचम स्वर का प्रयोग नहीं करते जैसे—म' ध नि तथा अवरोह में प्रयोग होता है जैसे—नि ध प म' ध म' ग रे सा। इस प्रकार इस में पंचम स्वर का महत्व कम रहता है। राग का मुख्य स्वर समुदाय जिसे बार-बार कह कर राग स्पष्ट किया जाता है, इस प्रकार है: - ध नि सा रे ग रे ग। इस राग के निकट का राग मुलतानी है इसलिए उसे उस त बचाना चाहिये। इस राग को तोड़ी या टोड़ी कह कर पुकारते हैं।

स्वर विस्तार

(१) सा, नि, सा रे ग, रे ग, रे, सा, ध नि सा, रे ग रे सा ।

(२) सा रे ग, रे ग, मं ग, मं रे ग, रे, सा, नि ध, मं ध, नि
सा, रे, सा, सा रे ग, रे सा ।

(३) सा रे ग, रे ग, मं ग, ध मं ग, रे ग, म' ध प, नि ध, प, मं
ग, रे ग, रे सा ।

(४) सा रे ग रे, सा, रे ग, मं ग, मं रे ग, रे सा, रे ग रे, सा, ध
नि सा रे ग, म' ग, म' प, म' ग, रे ग, म' ध नि, नि ध प,
म' ध, म' ग, रे ग, रे सा ।

(५) म' ग, म' ध, नि, सां, सां रे ग, रे सा, नि सां नि ध, मं
ध नि सां, रे गं मं रे गं, रे सां, नि ध प, म' ग, रे ग,
मं रे ग, रे सा ।

(११) राग भूपाली

दोहा—आरोहि अवरोहि में, सुर मनि कीन्हे त्याग ।
धग संवादी वादितें, कहो भूपाली राग ॥

थाट—कल्याण,

जाति—औडव,

वादी—गान्धार,

संवादी—धैवत,

समय—रात्रि का प्रथम प्रहर ।

आरोह—सा रे ग प ध सां ।

अवरोह—सां ध प ग रे सा ।

पकड़—ग, रे, सा ध, सा रे ग, पं ग, ध प ग, रे, सा ।

भूपाली राग में सब स्वर शुद्ध लगते हैं। इसके आरोह तथा अवरोह में मध्यम और निषाद स्वर वर्जित हैं इसलिये इसकी जाति औडव-औडव है। इसके थाट के विषय में बहुत मतभेद है। कुछ लोग इसे विलावल थाट का मानते हैं तथा कुछ लोग कल्याण थाट का। इस राग में क्योंकि सब स्वर शुद्ध लगते हैं और मध्यम स्वर वर्जित है इसलिये थाट विलावल ही उचित जान पड़ता है। परन्तु कल्याण थाट को मानने वाले कहते हैं कि मध्यम के वर्जित होने के कारण इसे विलावल थाट का नहीं कह सकते क्योंकि मध्यम के अतिरिक्त कल्याण में भी सब स्वर शुद्ध लगते हैं। इस राग के निकट का राग देशकार है जिससे इसे सदैव बचाना चाहिये। देशकार तथा भूपाली में केवल वादी-संवादी स्वरों का अन्तर है अन्यथा दोनों रागों के स्वर समान हैं।

स्वर-विस्तार

- (१) सा, रे सा, ध ध सा, सा रे ग, ग रे, सा रे, सा, ध प, ध सा।
- (२) सा रे ग, ग रे, सा, रे, सा, रे ग प, प, ग, रे, ग प, ग रे सा, रे सा, ध ध, सा रे ग, ग रे सा।
- (३) सा रे ग प, प ग, ग प ध, प ग, प ग रे, ग प ध सां, प, ध प ग रे, ग प, ग रे सा, रे, सा।
- (४) ग रे, ग प ध प, सां, सां रें, सां, ध ध सां रें, सां, रें सां, ध प, ग प ध सां, सां रें, गं रें सां, रें सां, ध प, ग प ध प ग, रे, सा रे सा।
- (५) ग ग, प ध सां, ध ध सां, रें सां, ध ध, सां रें गं, रें, सां रें सां, ध प, ग प ध सां, ध प, ग प ध प ग, रे, सा रे सा।

(१२) राग-विहाग

दोहा—कोमल मध्यम तीव्र सब, चढ़ते रिध को त्याग।

गनि धादी संवादिते, जानत राग विहाग॥

थाट—बिलावल,

जाति—औडव-संपूर्ण

वादी—गान्धार,

संवादी—निषाद,

समय—रात्रि का दूसरा प्रहर,

आरोह—नि सा ग म प नि सां।

अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा।

पकड़—नि सा, ग म प, ग म ग, रे सा।

इस राग में सब स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में ऋषभ और धैवत स्वर वर्जित हैं तथा अवरोह संपूर्ण है। इस राग में तीव्र मध्यम को लेने का प्रचार है। वास्तव में तीव्र मध्यम इस राग में विवादी स्वर की तरह लिया जाता है परन्तु आजकल तीव्र मध्यम इस राग का मुख्य स्वर बन गया है। बिना तीव्र मध्यम के विहाग राग फीका लगता है। इसी तीव्र मध्यम के कारण विद्वानों में इस राग के थाट के विषय में मतभेद है। कुछ लोग इसे बिलावल थाट का मानते हैं और तीव्र मध्यम का प्रयोग केवल विवादी स्वर के नाते करते हैं तथा कुछ लोग कल्याण थाट का मानते हैं और तीव्र मध्यम का स्वतन्त्र अथवा अनुवादी स्वर की तरह प्रयोग करते हैं कि पुराने समय में विहाग में केवल शुद्ध मध्यम का प्रयोग होता था क्योंकि कुछ प्राचीन गायक आज भी विहाग में तीव्र मध्यम का प्रयोग नहीं करते हैं। आगे चल कर प्रचार में तीव्र मध्यम लगने लगा और आज यह अनुवादी स्वर की तरह लगाया जाता है। इस प्रकार अब हम कह सकते हैं कि विहाग में दोनों मध्यम लगते हैं। तीव्र मध्यम का प्रयोग पंचम स्वर के सहारे होता है जैसे—प म, ग म ग। यह राग शृंगार रस प्रधान है।

स्वर विस्तार

- (१) सा, नि, प नि सा, नि, प, प, नि सा, ग रे सा ।
- (२) नि सा, ग, रे सा, नि सा, ग म ग, रे सा, नि सा, ग म प,
प म ग म ग, रे सा ।
- (३) नि सा ग म प, प म ग म ग, ग म प नि, ध प, म प, ग म
ग, सा म ग प, म, ग म ग, रे सा ।
- (४) नि सा ग म प, ग म प नि, नि सां, सां, नि, ध प, ग म प
नि सां, नि, ध प, म प ग म ग, प म ग म ग, ग रे सा,
नि सा ।
- (५) ग म प नि सां, रे सां, नि सां, गं रे सां, सां रे सां, नि प,
ग म प सां, नि प, प नि सां गं, रे सां, नि सा, गं मं गं
रे सां, नि सां नि प, म ग म ग, सा म ग प, म ग म ग,
रे सा ।

(१३) राग देश

- दोहा—पंचम वादी अरु रिखव. संवादी संजोग ।
सौरठ के ही सुरनते, देश कहत हैं लोग ॥
- थाट—खमाज. जाति—औडव — धं पूर्ण,
वादी—पंचम, संवादी—ऋषभ,
- समय—रात्रि का दूसरा प्रहर,
आरोह—सा रे म प नि सां ।
अवरोह—सां नि ध प म ग रे ग सा ।
पकड़—रे, म प, नि ध प, प ध प म, ग रे ग सा ।

इस राग में दोनों निषादों का प्रयोग होता है तथा बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में शुद्ध निषाद तथा अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग होता है। आरोह में गान्धार तथा धैवत स्वर वर्ज्य हैं इसी लिये इसके आरोह की जाति आंडव है तथा अवरोह संपूर्ण है। कुछ लोग इस राग के आरोह में ग और ध स्वरों का अल्प प्रयोग करके इसकी जाति संपूर्ण मानते हैं। अधिकतर ऋषभ स्वर पर स्वर समुदाय समाप्त करते हैं जैसे—म ग रे, रे म ग रे, प ध म ग रे, प म ग रे आदि। इसके वादी-संवादी स्वरों के लिये, लोगों में मतभेद है। कुछ लोग पंचम वादी और ऋषभ संवादी मानते हैं। कभी-कभी राग की सुन्दरता बढ़ाने के लिए कोमल गान्धार को राग के विवादी स्वर की तरह प्रयोग करते हैं। सोरठ, तिलककामोद आदि रागों से इसे बचाना चाहिये।

स्वर-विस्तार

- (१) नि सा, रे म, ग रे ग, नि सा, रे सा, रे, नि ध प, नि सा।
- (२) नि सा, रे म ग रे, रे म प ध, म ग रे, ग नि सा, रे म प, म प ध, म ग रे, ग रे ग नि, सा, ।
- (३) रे म प नि ध प, प ध म ग रे, रे म प नि सां, रे, नि ध प, ध म ग रे, ग नी सा, रे म प नि सां, नि सां नि ध प ध, म ग रे ग, नी सा।
- (४) म प नि सां, नि सां, प नि सां रे, सां रे, नि, ध प, म प, नि सां, रे म, ग रे ग, नि सां, नि सां रे, नि ध प, ध म ग रे, ग नि सा।

(५) म प नि सां, प नि सां रे, नि सां रे मं गं रे, गं रे नि सां,
प ध प म, नि सां, प नि सां रे, सां रे, नि, ध प, रे म प ध,
म ग रे, ग नि सा, ।

(१४) राग-तिलक कामोद

दोहा.—परि संवादी वादि है, चढ़त न धैवत गात ।
वक्र रिखव सोरठहिसें, तिलक कामोद सुहात ॥

थाट—खमाज, जाति—षाडव-संपूर्ण,
वादी—ऋषभ, संवादी—पंचम,
समय—रात्रि का दूसरा प्रहर,
आरोह—सा रे ग सा, रे म प ध म प, सां ॥
अवरोह—सां प ध म ग, सा रे ग, सा नि ।
पकड़ - प नि सा रे ग, सा, रे प म ग, सा नि ।

इस राग में दो निषाद तथा बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं । आरोह में शुद्ध तथा अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग देश राग की तरह होता है । अवरोह में धैवत स्वर वर्ज्य है तथा गान्धार स्वर का आरोह में अल्प प्रयोग है । कुछ लोग इस राग में गान्धार स्वर को भी वर्जित करते हैं और इस प्रकार आरोह औडव मानते हैं । अवरोह में कोमल निषाद वक्र रूप से लिया जाता है जैसे—सां प नि ध प ध म ग । देश राग से बचाने के लिये ऋषभ स्वर पर न्यास न करके गान्धार पर करते हैं जैसे—रे प म ग, ध प म ग, सां प म ग इत्यादि । यह राग देश, खमाज, तिलंग तथा सोरठ रागों से मिलता है इसलिए इसे इनसे बचाना चाहिये । यह शृंगार रस प्रधान है तथा क्षुद्र प्रकृति का है । इसलिये इसमें ठुमरी, दादरा आदि अधिक सुनने में आते हैं । ऋषभ स्वर का प्रयोग अवरोह में वक्र है—जैसे म ग रे ग सा ।

स्वर-विस्तार

- (१) सा, नि सा, प नि सा रे ग सा, सारे ग, सा नि, प नि सा ।
 (२) प नि सा रे ग सा, रे प, म ग, सा रे ग, सा नि, म प नि सां
 रे ग सा, रे म ग, सा रे गा, सा नि सा ।
 (३) सा रे प म ग, सा रे ग सा, रे प, म ग, सा रे म प ध, म
 ग, म ग, सां रे ग, सा नि, प नि सा रे ग, सा, रे म ग, सा
 नि सा ।
 (४) म प नि सां, नि सां, प ध म ग, सा रे म ग, सा रे ग, सा
 नि, प नि सा रे ग सा, रे म प ध म प, सां, सां, प ध म ग,
 सा रे प, म ग, सा नि सा ।
 (५) म म, प सां, नि सां, प नि सां रे ग' सां, रे' मं गं सां, प, नि
 ध म प, ध म ग, सा रे प म ग, सा रे म ग, सा नि, प नि
 सा रे ग सां, नि सा ।

(१५) राग—बिन्द्रावनी सारंग

दोहा:—जब तीखोहि निखाइ है, चढ़ते धैवत नाहि ।

तब यह सारंग राग ही बिन्द्रावनी कहाइ ॥

थाट—काफी,

वादी—ऋषभ,

जाति—औडव,

संवादी—पंचम,

समय—दोपहर,

आरोह—सा रे म प नि सां ।

अवरोह—सां नि प म रे सा ।

पकड़—नि सा रे, म रे, प म, रे सा ।

इस राग में दो निषाद तथा बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं । आरोह में शुद्ध निषाद तथा अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग होता है । गान्धार तथा धैवत स्वर इस राग में वर्जित है इसलिये इसकी जाति औडव-औडव है अधिकतर इसे लोग केवल 'सारंग' कह कर पुकारते हैं परन्तु बिन्द्रावनी सारंग, 'सारंग' के अनेक प्रकारों में से एक है । सारंग के अन्य प्रकार जैसे—शुद्ध सारंग, मियाँ की सारंग, मधमाद सारंग आदि हैं । इस राग में म रे, म रे, म प रे, नि प म रे, प रे म रे आदि स्वरों की सगत बहुत सुन्दर लगती है ।

स्वर-विस्तार

(१) सा, नि सा, रे, सा, नि प, नि सा, रे, म रे, सा, नि सा ।

(२) नि सा, रे म रे, नि सा, नि प, नि सा, रे, म रे, प म रे, म रे, सा, नि सा ।

(३) नि सा, म रे, प म, प, रे म रे, नि सा, म रे, रे म प, म प नि प, म प, म रे, प रे, म रे, सा नि सा ।

(४) रे म प, म प नि प, नि प म रे, म प नि म प, रे म रे, म प नि सां, प नि सां, नि प, म नि प म रे, प म रे सा ।

(१४७)

(५) म प नि सां, नि सां, प नि सां रें, सां रें, नि सां, रे मं रे,
 नि सां, प नि सां रें, मं रें, नि सां, नि प, म प नि सां,
 प नि प म रे, प म रे सा, नि सा ।

(५) राग बागेश्री

दोहा—तीवर रिध कोमल गमनि, मध्यम वादि बखानि ।
 खरज जहां संवादि है, बागेशरी बखानि ॥

थाट—काफ़ी, जाति—षाडव-संपूर्ण,

वादी—मध्यम, संवादी—षड्ज

समय—रात्रि का दूसरा प्रहर, या मध्य रात्रि,

आरोह—सा, नि ध नि सा, म ग म ध नि सां ।

अवरोह—सां नि ध म ग म ग रे सा ॥

पकड़—सा, नि ध सा, म ध नि ध, म, ग, रे, सा ।

इस राग में गान्धार तथा निषाद स्वर कोमल और बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं । इस राग की जाति के विषय में मतभेद है । कुछ लोग इसके आरोह में रे तथा प वर्जित करके इसे औडव-संपूर्ण जाति का मानते हैं । कुछ लोग आरोह में केवल पंचम वर्जित करके इसे षाडव-संपूर्ण मानते हैं । कुछ लोग इसके आरोह तथा अवरोह में पंचम वर्जित करके इसे षाडव-षाडव जाति का मानते हैं और कुछ लोग इसमें सब स्वरों का प्रयोग करके इसे संपूर्ण-संपूर्ण जाति का मानते हैं । मेरे विचार में इसे षाडव-संपूर्ण ही मानना उचित है क्योंकि प्रचार में आरोह में

(१४८)

रे का प्रयोग होता है जैसे—म ग, रे ग म ग रे सा, परन्तु पंचम का प्रयोग आरोह में नहीं करते जैसे—म ध नि सां । जो लोग इस राग के आरोह में पंचम का प्रयोग करते हैं वे इस प्रकार करते हैं—नि ध, प ध नि ध, म अथवा ध म प ध, म ग रे सा । कभी-कभी विवादी स्वर के नाते शुद्ध निषाद का प्रयोग इस राग में करते हैं ।

स्वर विस्तार

(१) सा, नि ध नि सा, नि सा म, म, ग रे, सा म, म ग रे सा, ।

(२) नि सा म, म ग म ध, म, ग रे सा, नि ध नि सा, ध नि सा, म, म ग रे, म ग रे सा ।

(३) नि सा म, म ग, म ध, ध म ग, म ध, नि ध, म, ग म, ध नि सां, नि ध, म ग, रे सा, रे सा, नि ध नि सा, म ।

(४) ग म ध, नि ध, म ध नि सां, नि ध, म ध, म नि ध म, ग रे ग म ध, ध म, ग रे म, ग रे सा ।

(५) ग म ध नि सां, नि सां, नि सां, रें सां, नि सां, नि ध, ध नि सां, मं गं रें, नी सां, सां रें सां, नी सां, नि ध म ध, सां नि ध म, म ध, म ग रे, म ग रे सा ।

(१७) राग-भीमपलासी

दोहा—तीखे रिध कोमल गमनी, आरोहत रिधहीन ।

सम संवादी वादिते, भीमपलासी चीन्ह ॥

थाट—काफी,

जाति—औडव-संपूर्ण,

वादी—मध्यम,

संवादी—षड्ज

समय—दिन का तीसरा प्रहर,

आरोह—नि सा ग म प नि सां ।

अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा ।

पकड़—नि सा म, म ग, प म, ग, म ग रे सा ।

इस राग में गान्धार तथा निषाद कोमल और बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में रे और ध वर्जित है इसलिये इसकी जाति औडव-संपूर्ण है। मध्यम स्वर पर ठहराव होता है और यह इस राग का वादी स्वर भी है जैसे नि सा म। पंचम पर अधिक ठहरने से धनाश्री राग होने की संभावना रहती है। धनाश्री तथा भीमपलासी दोनों निकट के राग हैं, दोनों के स्वर समान हैं। केवल वादी-संवादी स्वरों में अन्तर है। अवरोह करते समय सीधा न कह कर सां नि ध प म ग म ग रे सा, इस प्रकार कहते हैं। इस राग में प ग तथा म ग स्वरों की संगत मधुर लगती है। कभी-कभी शुद्ध निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के रूप में करते हैं।

स्वर विस्तार

(१) सा, नि, नि सा, नि ध प, प नि, नि, सा, ग रे सा ।

(२) नि सा म, म ग, सा ग म ग रे सा, नि सा, प नि सा, ग म ग रे सा ।

(३) नि सा ग म प, प ग म, नि सा, म ग प, ग रे सा, नि नी, सा ग रे सा, नी, सा ।

(४) सा ग म प, म प, प ग म, नि सा, ग म प, ग म, प नि ध प, ध म प, ग म ग म प नि सां, नि सां, नि ध प, ध म प, ग म, ग रे सा ।

(५) ग म प नि सां, नि सां, ष, नि, नि सां, नि सां गं रे सां नि सां, नि ध प, ग म प नि सां गं रे सां, रे नि सां, प सां, नि ध प, ध म, प नि ध प, ध म प, ग म, नि सा ग म प, ग म, ग रे सा ।

(१८) राग-पीलू

बोधाः—कोमल तोवर, सवहिं सुर, जैह गावत लग जाइ ।
गनि बादो संवादितें, पीलू राग बताइ ॥

थाट—काफी,

जाति—संपूर्ण,

बादी—गान्धार,

संवादी—निषाद,

समय—दिन का तीसरा प्रहर,

T

आरोह—नि सा, ग रे ग, म प, ध प, नि ध प सां ।

अवरोह—सां नि ध प, म प, ग, नि सा ।

पकड़—नि सा ग नि सा, प ध नि सा ।

इस राग में सप्तक के शुद्ध तथा विकृत १२ स्वरों का प्रयोग होता है । कोमल ऋषभ का प्रयोग इस प्रकार करते हैं—सा रे नि सा । शुद्ध गान्धार का प्रयोग अधिकतर आरोह में करते हैं जैसे—नि सा ग मप तथा क मल गन्धार आरोह और अवरोह दोनों में प्रयोग करते हैं जैसे—नि सा, ग म प या ग नि सा । कोमल धैवत का प्रयोग पंचम के सहारे हाता है—प ध प ध नि सां ध प । तान्र मध्यम का प्रयोग बहुत कम होता है । १२ स्वरों के लगने से इस राग की जाति संकीर्ण मानी जाती है तथा प्रकृति क्षुद्र । इस राग में ठुमरो, दादरा, कहरवा, टप्पा आदि अधिक गाये जाते हैं । इसमें शृंगार रस की प्रधानता है । यह एक लोक-प्रिय राग है और जिस प्रकार सुबह भैरवी पसन्द की जाती है उसी प्रकार शाम को पीलू ।

स्वर विस्तार

(१) सा, नि सा ग, रे सा, नि सा, ध प, प ध प ध, नी, सा ।

(२) नि सा, ग, सा नि, प ध नि सा, ग रे ग, सा ग रे, सा नि सा ।

(३) नि सा ग म प, म प, ग, रे सा नि, सा ग म प, ध म प,

ग, सा नि, प नि सा रे ग, सा नि सा, ग म, ध प, ग रे,
नि सा ।

(४) नि सा ग म प, ग म प ध नि, ध प, म प ध, म प, ग,
रे सा नि, सा ग म प, ग म ध प, ग रे ग म, रे म ग,
सा नि, सा ।

(५) ग म प नि सां, नि सां, नि सां गं, रें सां, नि, सां, ध प,
प ध प ध नि सां, ध प, म ग, सा ग सा नी, सा ।

:(१६) राग हमीर

ढोहा—दो मध्यम तीवर सबहिं, धैवत वादी जान ।
संवादी गंधार है, राग हमीर बखान ॥

थाट—कल्याण, जाति—संपूर्ण,
वादी—धैवत, संवादी—गान्धार,
समय—रात्रि का प्रथम प्रहर ।

आरोह—सा रे सा, ग म ध, नि ध सां ।

अवरोह—सां नी ध प, म प ध प, ग म रे सा ।

पकड़—सा रे सा, ग म ध ।

इस राग में दो मध्यम तथा बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं । आरोह में पंचम स्वर का प्रयोग बहुत कम होता है । जैसे—ग म ध इस प्रकार पंचम को छोड़ देते हैं । पंचम छोड़ने के कारण कुछ लोग इसकी जाति

षाड्ज संपूर्ण मानते हैं। परन्तु इस स्वर का प्रयोग आरोह में तीव्र मध्यम के साथ खूब होता है जैसे—मं प ध नि सां। कोमल का प्रयोग इस राग में विवादी स्वर की तरह होता है जैसे—ध नि ध प। कुछ लोग धैवत स्वर को वादी न मानकर इसमें पंचम को वादी मानते हैं। इस राग को केदार कामोद छायावट आदि रागों से बचाना चाहिये।

स्वर विस्तार

(१) सा, रे सा, ध प सा, रे सा, ग म रे सा।

(२) सा, ग म रे, ग म ध, प, मं प ग म, ध, ध, मं प, ग म रे सा, रे सा, ध प, मं प ध नि सा, रे सा।

(३) सा, ग म ध, प ध, मं प, ग म ध, ग म नि ध, मं प, ग म र, ग म ध, प, प ग म रे, सा रे सा।

(४) ग म ध, ध, ध नि सां, ध प, मं प, ग म ध, प, ध नि सां, ध प, मं प, ग म ध, मं प, ग म रे सा, रे सा।

(५) ग म ध, नि सां, नि सां रे सां, गं मं रे सां, नि सां ध प, मं प ध नि सां रे सां, गं मं पं, गं मं रे, सां रे सां, सां, ध प, ग म ध नि, ध, ध नि सां, ध प, मं प, ग म रे, रे ग म ध प, ग म रे सा।

(२०) राग मालकोस

दोहा—कोमल सब पंचम रखव, दोऊ वर्जित कोन्ह।
सुम संवादी वादितें, मालकंस को चीन्ह॥

थाट—भैरवी.

जाति—औडव

वादी—मध्यम,

संवादी—षड्ज

समय—रात्रि का तीसरा प्रहर,

आरोह—नि सा ग म ध नि सां ।

अवरोह—सां नि ध म ग म ग सा ।

पकड़—म ग, म ध नि ध, म, ग, सा ।

इस राग में ग, ध और नि स्वर कोमल जगते हैं । आरोह और अवरोह में ऋषभ तथा पचम स्वर वर्जित हैं । यह एक मधुर राग है तथा मीढ़, गमक, कण, मुक्ती आदि इसकी सुन्दरता को बढ़ाते हैं । गान्धार, धैवत तथा निषाद स्वरों पर आन्दोलन होता है । करुण रस की इस राग में प्रधानता है ।

स्वर विस्तार

(१) सा, नि सा, ध नि सा, नि सा ग सा ।

(२) ध, नि सा म, म ग, नी सा, ध ध, नि सा, नि सा ग, ग, म, ग, ग, नि सा, ध नि, सा ।

(३) नि सा ग, म, ग म ध, म, ध ग म, सा ग म, ग, ग, नि सा, ध, नि, सा म, ग, सा, नि, नि, सा

T

(४) नि सा ग, म, ग म ध, नि, ध नि, ध म, म ध नि, ध म,
 ग म ध नि सां, ध नि, ध म, ग म ध ग म, ग, ग, नि सा,
 ध नि सा ।

(५) ग म ध, नि सां, नि सां गं सा, गं नि सां, ध, म ध नि सां,
 नि सां, ध, म ध म, नि ध, म, ग म ध नि सां गं मं, गं .
 नि सां, नि सां, ध, नि ध, म ग, ग, नि सा ।



रागों के संपूर्ण परिचय

क्रमांक और राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी संवादी स्वर	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
✓(१) विला- वल	विलावल	संपूर्ण	सब स्वर शुद्ध	ध-ग	मध्य व तार	शान्त
✓(२) कल्याण (इमन)	कल्याण	संपूर्ण	म तीव्र और सब स्वर शुद्ध	ग-नि	मन्द्र व मध्य	शान्त
✓(३) खमाज	खमाज	पाडव-संपूर्ण आरोह में रे वर्जित	दोनों निषाद बाकी स्वर शुद्ध	ग-नि	मन्द्र व मध्य	चंचल
✓(४) भैरव	भैरव	संपूर्ण	रे और ध कोमल बाकी स्वर शुद्ध	ध-रे	मध्य व तार	शान्त
✓(५) काफी	काफी	संपूर्ण	ग और नि कोमल बाकी स्वर शुद्ध	प-स	मध्य व तार	चंचल

(१५७)

पर एक विहंगम दृष्टि

राग के गाने का समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
दिन का प्रथम प्रहार	सारे ग म पध निसां सां नि धप म ग रे सा	ग म रे, ग प ध नि सां	यह एक शुद्ध राग है। जब कोमल निषाद का प्रयोग अवरोह में होता है तब इसे अल्हैया विलावल कहते हैं। अवरोह में ग वक्र होता है।
रात्रि का प्रथम प्रहार	सारे ग म पध निसां। सां निध प म' ग रे सा	ग रे सा, नि रे ग रेसा प म' ग रे सा	राग कल्याण में जब मध्यम शुद्ध का प्रयोग होता है तब इसे यमन कल्याण कहते हैं।
रात्रि का द्वितीय प्रहार	सा ग म प धनिसां सां नि ध प म ग रे सा	नि ध, मपध, मग	इसके आरोह में शुद्ध तथा अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग होता है। यह शृंगारिक राग है और ठुमरी दादारा आदि इसमें गाते हैं।
दिन का प्रथम प्रहार (संधि प्रकाश)	सा रे ग म प ध नि सां। सां नि ध प, म ग रे सा	सा, ग, म प, ध प	रे और ध स्वरों पर इस राग में आन्दोलन होता है।
रात्रि का द्वितीय प्रहार	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा	सासा, रेरे, ग ग; मम प	कभी-कभी इस राग में जब शुद्ध ग और नि का प्रयोग करते हैं तब इसे मिश्रकासी कहते हैं।

(१४८)

क्रमांश और राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी- संवादी स्वर	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
✓(६) आसा- वरी	आसावरी	औडव-संपूर्ण आरोह में ग, नि वर्जित	ग, ध नि स्वर कोमल	ध-ग	मध्य व तार	शान्त
✓(७) भैरवी	भैरवी	संपूर्ण	वस स्वर कोमल	म-सा	मध्य व तार	चंचल
(८) मारवा	मारवा	षाडव, प वर्जित है	रे कोमल म त, व्र	रे-ध	मध्य व तार	चंचल
(९) पूर्वी	पूर्वी	संपूर्ण	रे, ध कोमल, दो मध्यम	ग-नि	मध्य व तार	गम्भीर
(१०) तोड़ी	तोड़ी	संपूर्ण	रे, ग, ध कोमल, म तीव्र	ध-ग	मन्द्र व मध्य	गम्भीर

T

राग के गाने का समय	आरोहावरोह	पकड़	विशेष विवरण
दिन का द्वितीय प्रहर	सा रे म प ध सा सा नि ध प म ग रे सा	म प ध म प ग रे सा	इस राग में म प ध म प, ग रे सा वह स्वर सगूह बार बार लिया जाता है। प ग की संगति होती है।
दिन का प्रथम प्रहर	स रे ग म प ध नि सा। सा नि ध प म ग रे सा	म ग, सा रे सा, ध नि सा	इस राग में सप्तक के शुद्ध तथा विकृत १२ स्वरों को लगाने का प्रचार है।
सांयकाल	सा रे ग म ध नि सा सा नि ध म ग रे सा	ध म ग रे, ग म ग, रे सा	इस राग में रे ग, और ध स्वर यह महत्वपूर्ण हैं। यह शाम का संधिप्रकाश राग है।
शाम का संधि प्रकाश	रे ग प ध नि सा सा नि ध प म ग रे सा	नि, सा रे ग, म ग, म, ग, रे ग, रे सा	इस राग में दोनों मध्यम लगते हैं जैसे—प म ग म ग अथवा प म ग म ग रे म ग। इसके विशेष स्वर सा, ग, प और नि हैं।
दिन का दूसरा प्रहर	सा रे ग म प ध नि सा। सा नि ध प म ग रे सा	ध नि सा रे ग रे सा, म ग रे ग सा	इस राग में गान्धार स्वर अति कोमल लगता है। मुल-तानी राग से बचाने के लिये ध नि सा रे ग, रे ग, रे सा इस प्रकार बार लिया जाता है।

क्रमांक और राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादा संवादी स्वर	विस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
(११) भूपाली	कल्याण	औडव म और नि वर्जित हैं	सब स्वर शुद्ध	ग-ध	मन्द्र व मध्य	शान्त
(१२) बिहाग	दिलावल	औडव संपूर्ण आरोह में रे, ध वर्जित	सब स्वर शुद्ध-	ग-नि	मन्द्र व मध्य	गम्भीर
(१३) देश	खमाज	औडव-संपूर्ण आरोह में ग ध वर्जित	दो निषाद बाकी स्वर शुद्ध	प-रे	मध्य व तार	शान्त
(१४) तिलक कामोद	खमाज	औडव-संपूर्ण आरोह में ध वर्जित	दो निषाद बाकी स्वर शुद्ध	रे-प	मन्द्र व-मध्य	चंचल
(१५) बिन्द्रा-वनी सारंग	काफी	औडव, ग, ध वर्जित हैं	दो निषाद बाकी स्वर शुद्ध	रे-प	मध्य व तार	चंचल

T

राग के गाने का समय	आरोह-अवरोह	पकड़	विशेष विवरण
रात्रि का प्रथम प्रहर	सा रे ग प ध सां । सां ध प ग रे सा	ग रे सा ध सा रे ग प ग ध प ग रे सा	कुछ लोग इस कल्याण थाट का न मान कर विलावल थाट का मानते हैं ।
रात्रि का दूसरा प्रहर	नि सा ग म प नि सां । सां नि ध प म ग रे सा	नि सा ग म प ग म ग,	इस राग में दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है । मध्यम तंत्र विवादी स्वर की तरह क्रिया जाता है जैसे प म ग म ग
रात्रि का दूसरा प्रहर	सा रे म प नि सां सां नि ध प म ग रे ग सा	रे म प नि ध प, प ध प म ग रे ग सा	यह राग अति मधुर है । तिलककामोद इसके निकट का राग है । इसमें ग रे, प म ग रे स्वर अधिक आते हैं ।
रात्रि का दूसरा प्रहर	सा रे ग सा, रे म प ध म प सां । सां प ध म ग सा रे ग सा नि	प नि सा रे ग, सा, रे प म ग, सा नि	इस राग को देश राग से बहुत बचाना चाहिये । तिलंग और खमाज भी इसके निकट के राग हैं । कुछ लोग इसके आरोह में ग और वर्जित करके इसे औडव-संपूर्ण मानते हैं ।
दिन का दूसरा प्रहर (दोपहर)	सा रे म प नि सां सां नि प म रे सा	नि सा रे, म रे, प म, रे सा	इस राग के आरोह में शुद्ध तथा अवरोह में कोमल निपाद लगता है । प रे, म रे, नि प म रे आदि स्वरों की संगत होती है ।

क्रमांक और राग का नाम	थाट	जाति	स्वर	वादी संवाद, स्वर	निस्तार सप्तक	राग की प्रकृति
(१६) वागेश्वरी	काफी	पाडव-संपूर्ण	ग नि, कोमल वाकी स्वर शुद्ध	म-सा	मन्द्र व मध्य	गम्भीर
(१७) भीम-पलासी	काफी	औडव-संपूर्ण आरोह में रे, ध वर्जित	ग, नि कोमल वाकी स्वर शुद्ध	म-सा	मन्द्र व मध्य	शान्त
(१८) पीलू	काफी	संपूर्ण	दो ग, दो ध और दो नि, आजकल १२ स्वरों का प्रयोग होता है	ग-नि	मन्द्र व मध्य	क्षुद्र
(१९) हसीर	कल्याण	संपूर्ण	दो मध्यम और वाकी स्वर शुद्ध	ध-ग	मध्य व तार	गम्भीर
(२०) माल-कोस	भैरवी	औडव, रे, प वर्जित	ग, ध, नि स्वर कोमल	मा-सा	मन्द्र व मध्य	शान्त

राग के गाने का साथ	आरोहः वरोहः	पकड़	विशेष विवरण
रात्रि का दूसरा प्रहर (मध्य रात्रि)	सा नि ध नि सा म ग म ध नि सां। सां नि ध म ग म ग रे सा	सा नि ध सा म ध नि ध म ग रे सा	इसका जाति के विषय में मतभेद है। ध म की संगत मधुर होती है।
दिन का तीसरा प्रहर	नि सा ग म प नि तां। सां नि ध प म ग रे सा	नि सा म, म ग, प म, ग, रे सा	इस राग में सा, म और नि स्वर महत्वपूर्ण हैं पंचम पर अधिक ठहराव नहीं करना चाहिए।
दिन का तीसरा प्रहर	नि सा, ग रे ग, म प, ध प, नि ध प सां। सां नि ध प, म प, ग नि सा	नि सा ग नि सा, प ध नि सा	इस राग की जाति संकरा है क्योंकि इसमें १२ स्वरों का प्रयोग गायक करते हैं शृंगार रस प्रधान होने से दुमरी, दादरा टप्पा आदि इसमें अधिक गाये जाते हैं।
रात्रि का प्रथम प्रहर	सा रे सा, ग म ध, नि ध सां। सां नि ध प, म प ध प, म रे सा	सा रे सा, ग म ध,	कुछ लोग इस राग में पंचम स्वर वर्जित करते हैं परन्तु आरोह में मध्यम तंत्र के साथ उसका प्रयोग करते हैं। कमी-कर्म, कोमल निषाद भां प्रयोग करते हैं।
रात्रि का तीसरा प्रहर	नि सा ग म ध नि तां। सां नि ध म ग म ग सा	म ग म ध नि ध म ग सा	इस राग में ग, ध और नि स्वरों पर आन्दोलन होता है। प्राचीन ६ रागों में से यह एक राग है।

Vijaya Kumari Saha
Σ - C.

103
43
21

पुस्तक मिलने का पता—

प्रयाग सङ्गीत समिति,

१०८ दिवेष्ट रोड, इलाहाबाद